राष्ट्रीय जीवन-चरित-माला

हरि नारायण आप्टे

महेश्वर अनंत करंदीकर

H
928.914 6
Ap 83 K

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY * SIMLA

DATA ENTERED
CATALOGUED

हरि नारायण आप्टे

राष्ट्रीय जीवन-चरित माला

हरि नारायण आप्टे

महेश्वर अनंत करन्दीकर

अनुवादक :

धीरेन्द्र वर्मा

Presented to the Library,
21 May 76

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नई दिल्ली

73

मार्च १९६९ (फाल्गुन १८९०)

© महेश्वर अनंत करन्दीकर, १९६८

Library IIAS, Shimla
H 928.914 6 Ap 83 K
00031675

रु० १.७५

INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 31675
Date 10.6.69
H
928.9146
Ap 83 K

सचिव नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, १३ द्वारा प्रकाशित
एवं सम्मेलन मुद्रणालय, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित

प्रस्तावना

आदिकाल से ही इस देश में, जीवन के हर क्षेत्र में, असाधारण व्यक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ है। हमारा इतिहास ऐसे महान् व्यक्तियों के नामों से भरा पड़ा है, जिनकी कला, साहित्य, राजनीति, विज्ञान या अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण देन रही है। कुछ के नाम तो घर-घर में प्रचलित हैं। इस तरह के भी अनेक व्यक्ति हुए हैं, जिनके नाम से तो लोग परिचित हैं पर जिनके जीवन और कार्यों के सम्बन्ध में उनको बहुत कम ज्ञान है। कुछ ऐसे भी लोग हुए हैं, जिनकी उपलब्धियाँ असाधारण रही हैं पर उनके विषय में लोगों का ज्ञान नहीं के बराबर है।

एक देश का इतिहास काफी सीमा तक उसके नर-नारियों का इतिहास है। उन्होंने ही उसको गढ़ा, संवारा और उसका विकास किया है। जन-साधारण के लिए यह आवश्यक है कि वह इन व्यक्तियों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करे, जिससे कि वह यह समझ सके कि हमारा देश विकास की किन अवस्थाओं से होकर गुज़रा है।

हरि नारायण आप्टे मराठी साहित्य में एक प्रतिष्ठित नाम है। उन्होंने ही मराठी उपन्यासों को उनका स्वरूप दिया। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक युग में वे अपने समाज के मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं में उलझे रहे। इसके पश्चात् उन्होंने ऐतिहासिक रोमांस को लिया। महाराष्ट्र में उनकी विशेष प्रतिष्ठा है क्योंकि एक अद्वितीय साहित्यकार होने के साथ ही वे एक प्रख्यात सामाजिक नेता भी थे जिन्होंने हिन्दू समाज के उत्थान और सुधार के प्रयास कई स्तरों पर किए, अपने उपन्यासों के द्वारा तथा अपने सार्वजनिक जीवन के अन्य कार्यों के द्वारा

भी। अतः वे एक महान् सामाजिक नेता तथा एक महान् उपन्यासकार दोनों थे।

हम डॉ० एम० ए० करन्दीकर के आभारी हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय जीवन-चरित माला के लिए इस महान् लेखक की जीवनी लिखी।

नई दिल्ली
अक्तूबर ४, १९६८

बालकृष्ण केसकर

विषय-सूची

	पृष्ठ
प्रस्तावना	५
१. बाल्यकाल तथा युवावस्था	९
२. साहित्य में प्रवेश	२४
३. सामाजिक और राजनैतिक कार्यकलाप	४२
४. सुधारक के रूप में	५७
५. कृतित्व	७०
६. ऐतिहासिक उपन्यास	८०
७. कविता तथा नाटक	८५

१. बाल्यकाल तथा युवावस्था

आप्टे परिवार उन चितपावन ब्राह्मण-परिवारों में से एक है जो कोंकण क्षेत्र में वस गए थे। आप्टे के पितामह खान्देश, महाराष्ट्र में महलकारी (एक तालुक अधिकारी) थे। इनकी दो कन्याएँ तथा चार पुत्र थे, जिनमें से एक हरि नारायण आप्टे के पिता नारायण थे। उस युग के रहन-सहन के स्तर को देखते हुए आप्टे परिवार का स्तर उच्च कहा जा सकता था। आप्टे के पिता नारायण का विवाह श्री गणपतराव परांजपे, जो खान्देश जिले में मामलातदार थे, की पुत्री यमू से हुआ था। उस गाँव में नारायण तथा उनके भाई महादेव की शिक्षा और आगे तक न हो पाई। वे आगे शिक्षा प्राप्त करने को उत्सुक थे, इसीलिए उनकी माता ने उन्हें पूना भेज दिया जहाँ वे गवर्नमेण्ट हाई स्कूल में दाखिल हुए। नारायण ने यह अनुभव किया कि उनके साधन इतने नहीं हैं कि दोनों भाइयों को उच्च शिक्षा मिल सके, और उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। उन्होंने इन्दौर में दस रुपए मासिक के अल्प वेतन पर एक नौकरी कर ली तथा काफी समय वाद जव उन्होंने इन्दौर छोड़ा तव तीस रुपए मासिक वेतन प्राप्त कर रहे थे। नारायण पूना में अपने भाई महादेव को, जो एक मेधावी छात्र थे, रुपए भेजते रहे।

इन्दौर में नारायण की धर्मपत्नी लक्ष्मी ने आठ मार्च, १८६४ को एक पुत्र को जन्म दिया (शक सम्वत् के अनुसार माघ, अमावस्या १७८५)। इस पुत्र का जन्म दादी वगुताई के लिए एक महत्वपूर्ण घटना थी। १८६४ में आप्टे परिवार पूना चला आया। इन्दौर की नौकरी छोड़कर नारायण ने वम्वई में, १८६७ में, भारतीय डाक विभाग में काम करना आरम्भ कर दिया। वड़े भाई महादेव ने नवम्वर १८६७ में वी० ए० की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया तथा पूरा परिवार एक साथ रहने के लिए वम्वई चला आया। हरि की माता का स्वर्गवास १८६८ में, तीसरी

सन्तान के जन्म के तेरह दिन वाद, प्रसूति ज्वर से हो गया। वच्चे की भी मृत्यु हो गई। इसके पहले एक कन्या की मृत्यु रेल-यात्रा में ही, सम्भवतः न्यूमोनिया के कारण, हो गई थी। हरि ने लक्ष्मीवाई को मरते हुए देखा था और, हालांकि वे केवल चार वर्ष की आयु के थे, इस मृत्यु ने उनके मन पर स्थायी प्रभाव डाला था। लक्ष्मीवाई की मृत्यु के समय के अन्तिम शव्द वाद में आप्टे के उपन्यास 'पण लक्षात कोण घेतो' (पर कौन परवाह करता है ?) में हमेशा के लिए सुरक्षित कर दिए गए। लक्ष्मी वाई की मृत्यु शैया पर महादेव ने उन्हें वचन दिया कि वह हरि के पालन-पोषण के लिए सव कुछ करेंगे और उन्होंने अत्यंत निष्ठा के साथ अपने वचन का पालन किया। हरि अपनी माँ को वहुत अधिक प्यार करते थे। अपनी माता के स्नेह के सुन्दर शव्द-चित्र हरि के उपन्यास 'पण लक्षात कोण घेतो' के यमू की माँ के चरित्र में, 'मी' (मैं) में सुन्दरी की माँ के रूप में, तथा 'कर्मयोग' में चन्द्रशेखर की माँ के चरित्र में सुरक्षित हैं।

हरि अव अपने वावा और वुआ के अधिकाधिक स्नेहपात्र वनते गए। यह शरारती स्वभाव के थे और एक वार उनके चाचा को उन्हें एक पुलिस वाले के क्रोध से वचाना पड़ा था, क्योंकि उन्होंने पुलिस कमिश्नर के आदेशों के विरुद्ध वम्वई की सड़कों पर दिवाली के अवसर पर पटाखे छोड़े थे। वह नकल करने की कला में दक्ष थे, तथा तरकारी वेचनेवालों, संपेरों और इस प्रकार के अन्य लोगों की आवाजों की नकल कर लेते थे।

हरि के पिता ने १८७० में पुनः विवाह किया। इनकी सौतेली माँ अत्यन्त वात्सल्यमयी थीं, परन्तु इन लोगों का एक साथ रहना वहुत कम सम्भव हुआ जिसका कारण था नाना साहव का वार वार तवादला होना। हरि पहले वम्वई में अपने चाचा के परिवार में रहे और वाद में अपने पूना के घर में अपनी दादी तथा विधवा वुआ के संरक्षण में रहे।

अण्णा साहेव ने १८७१ में अपनी कानून की डिगरी प्राप्त की। उत्तीर्ण छात्रों की सूची में उनका नाम सवसे ऊपर था। इस वार सभी लोग प्रसन्न हुए। कुछ समय के लिए अण्णा साहेव ने वम्वई सरकार के न्याय विभाग

में सब जज के पद पर कार्य किया, पर लगभग चार वर्ष बाद पद-त्याग करके बम्बई के हाईकोर्ट में वकालत करने लगे। इसी बीच इनकी पत्नी का भी स्वर्गवास १८७२ में क्षयरोग से हो गया। हरि दुबारा अनाथ हो गए। वकालत से अण्णा साहेब की आय बहुत अच्छी थी, परन्तु अपनी पत्नी के देहान्त के बाद वे उदासीन हो गए और संयुक्त परिवार की सहायता करने में उनकी दिलचस्पी जाती रही। कभी-कभी घर पर उनका व्यवहार असह्य होने लगा। एक बार अण्णा साहेब के अपनी विधवा बहन को कुछ कड़े शब्द कहने पर हरि के पिता ने सोचा कि उन्हें अलग घर की व्यवस्था करनी चाहिए और उसी के दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने फांसवाड़ी, बम्बई में एक मकान ले लिया और वहाँ रहने लगे। १८७८ में बम्बई के बढ़ते हुए खर्चों के कारण हरि के पिता के लिए पूरे परिवार को पूना ले जाना आवश्यक हो गया, क्योंकि उन दिनों पूना बम्बई से सस्ता था।

हरि का उपनयन संस्कार पूना में १८७२ में उनकी बुआ की मृत्यु के पूर्व, उन्हीं के अनुरोध पर, कर दिया गया। यह एक बहुत ही शानदार उत्सव था जो चार दिनों तक चलता रहा। संस्कार से पूर्व होने वाले भोज में (जिसे 'मातृ भोजन' कहते हैं, तथा जिसमें लड़का, जिसका यज्ञोपवीत होता है, अपनी माँ के साथ एक ही थाली में अन्तिम बार भोजन करता है) श्रीमती राधाबाई गोखले ने, जो उनकी पड़ोसी थीं, कुशाग्र बुद्धि हरि को इतना पसन्द किया कि उन्होंने यह इच्छा प्रगट की कि वह अपनी कन्या मधु का विवाह हरि से ही करेंगी, वह चाहे जब विवाह करे। उनके पति, दामोदर विश्वनाथ गोखले पूना में एडवोकेट तथा आप्टे के पड़ोसी थे। हरि अब पूना में स्कूल में पढ़ रहे थे।

हरि ने बम्बई में, जहाँ वे अपने चाचा के साथ रह रहे थे, अपने छठे वर्ष में स्कूल जाना आरम्भ किया। प्रारम्भ में उन्होंने पढ़ने में अधिक रुचि ली क्योंकि उनके चाचा के घर में पुस्तकें सरलता से उपलब्ध थीं। अपनी अवस्था के अन्य लड़कों के विपरीत हरि की रुझान खेल-कूद की ओर कम

थी। पढ़ने में उनकी अभिरुचि ने उन्हें नटखटपन तथा किशोरावस्था की शरारतों से अलग रखा। उन्होंने शीघ्र ही विशप्स हाई स्कूल, वम्बई में अंग्रेजी के तीन स्टैण्डर्ड पूरे कर लिए। परन्तु १८७८ में जब आप्टे परिवार पूना पहुँच गया तब हरि गवर्नमेन्ट हाई स्कूल, पूना में दाखिल हो गए जो कि एक प्रख्यात संस्था थी तथा जिसके अध्यापक अत्यन्त योग्य थे। इस स्कूल में अनुशासन और वातावरण दोनों अच्छे थे। वम्बई क्रिश्चियन स्कूल का वहुत ही भिन्न तथा वस्तुतः मिशनरी वातावरण था, जब कि पूना हाई स्कूल अपनी परम्परा तथा स्वरूप में पूर्णतः मराठी था। स्कूल के अध्यापक जिन्सीवाले या चिपलूणकर या हेडमास्टर श्री कुण्टे, आदि में छात्रों को विद्वत्ता, शिष्टता तथा सुरुचि का आदर्श मिलता था। वे महान् विद्वान्, देशभक्त तथा आदर्शवादी थे। परन्तु हरि पर सबसे अधिक प्रभाव चिपलूणकर का पड़ा जिन्होंने महाराष्ट्र में शिक्षा तथा विद्वत्ता का एक नया युग आरम्भ किया। उनकी पत्रकारिता राष्ट्रीयता के आदर्श पर आधारित थी। इससे उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम तीन दशकों के छलपूर्ण तथा विध्वंसकारी ब्रिटिश प्रचार तथा बौद्धिक उच्छेदन का प्रतिकार हुआ। हरि ने स्कूल में जो मित्र वनाए उनमें नारायण सखाराम पांसे, कृष्ण वावले, नरहरि जेंजुरीकर, शिवराम साठे, आत्माराम देशमुख, गंगाधर महाजनी, वैजनाथ काशीनाथ राजवड़े, अत्रे, ढेकणे, परांजपे तथा लेले थे। इनमें से अनेकों ने आगे चलकर महाराष्ट्र के सार्वजनिक जीवन में विभिन्न तरीकों से भाग लिया।

हरि के पिता का तवादला १८८० में सतारा को हो गया। तव से अनेक वर्षों तक हरि पूना के घर के परिवार के सवसे वरिष्ठ पुरुष-सदस्य हो गए। यहाँ उनका जीवन नियंत्रणहीन हो गया क्योंकि उन दिनों भला स्त्रियाँ पुरुषों पर कितना नियंत्रण रख पातीं? हरि का दुलार भी वहुत होता था। उनमें अभी भी वाल्यकाल का नटखटपन मौजूद था। वे अपने संस्कृत के शास्त्री से तव तक विद्या-ग्रहण नहीं करते थे जव तक रोज़ एक वार उनके गंजे सिर पर हाथ फेरने की अनुमति उन्हें नहीं मिल

जाती थी। उन्होंने संस्कृत के अनेक महान् ग्रंथ पढ़े जैसे रघुवंश, शकुन्तला, विक्रमोर्वशीय आदि और उन्होंने अपने संस्कृत के ज्ञान को इतना विकसित कर लिया कि वे शास्त्रीय संस्कृत काव्य का अध्ययन बिना किसी सहायता के करने लगे। इस प्रकार संस्कृत तथा मराठी में वे आगे थे। उन्होंने अंग्रेजी की अच्छी शिक्षा प्राप्त की परन्तु कुछ लापरवाह थे और गणित की सदैव उपेक्षा करते थे। अपनी लिखावट पर भी ध्यान नहीं देते थे। इस कारण वे कभी भी अपनी कक्षा में सर्वोच्च स्थान न प्राप्त कर सके। संभवतः इसी का यह परिणाम हुआ कि उनके अन्दर की सभी महत्वाकांक्षाएँ समाप्त हो गईं।

परन्तु उनमें निरीक्षण करने की शक्ति बहुत अच्छी थी। उन्होंने कविता तथा लघु कहानियाँ, बहुत पहले लिखनी आरम्भ कर दी। उनकी एक कहानी 'पूरी हौस फिटली' तब लिखी गई थी जब वे अंग्रेजी के पाँचवे स्टैण्डर्ड में पढ़ते थे। वे एक मासिक पत्र पढ़ा करते थे जिसका नाम 'नाट्य कथार्णव' (नाटक और कहानी का सागर) था। इससे उनकी कल्पना को पोषक सामग्री मिलती थी। उन्होंने मिडोस टेलर की रचना 'पाण्डुरंग हरि' का अनुवाद 'अनाथ पाण्डु रंग' के रूप में किया तथा एक दूसरी पुस्तक 'तारा' का भी अनुवाद किया। किन्तु यह दोनों अनुवाद अब प्राप्य नहीं हैं।

विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने अपने न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना पहली जनवरी, १८८० में की जिसमें बाद में तिलक, करन्दीकर तथा भागवत ने प्रवेश किया। ये सभी डेक्कन कालेज के स्नातक थे। यह कार्य युवा पीढ़ी को राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करने की उनकी आकांक्षा का स्वाभाविक परिणाम था। सरकारी स्कूलों की शिक्षा में आत्म-गौरव के उस तत्व की कमी थी जो एक राष्ट्र के युवकों को प्रेरणा देती है। गवर्नमेन्ट हाई स्कूल के उच्च-स्तरों के अनेक पुराने विद्यार्थी विष्णुशास्त्री तथा उनके अनुकरणीय एवं प्रेरणापूर्ण शिक्षण से परिचित थे। हरि ने अपने कुछ उत्साही सहपाठियों के साथ इस नए स्कूल में प्रवेश प्राप्त किया। अन्य बहुत से छोटे वर्गों के

विद्यार्थियों ने भी उनका अनुसरण किया। इस स्कूल में पहले दिन डेढ़ सौ लड़कों ने प्रवेश किया। माधवराव नामजोशी, वासुदेव शास्त्री खरे (बाद में मराठा इतिहास के शोधकर्ता) हरि कृष्ण दामले (अपने अंग्रेजी के अध्यापन के लिए प्रख्यात) नन्दर्गीकर शास्त्री (प्रख्यात संस्कृत के विद्वान् तथा सम्पादक) जैसे विख्यात अध्यापकों ने इस संस्था का सेवा-कार्य प्रथम दिन से तथा बहुत ही अल्प वेतन पर आरम्भ कर दिया। संस्कृत के महान् विद्वान् वामन शिवराम आप्टे ने इसी वर्ष के अगस्त मास में संस्था में कार्य आरम्भ कर दिया। इस प्रकार से सही अर्थों में स्कूल अच्छी तरह चालू हो गया, और बहुत काल तक राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र बना रहा। तीन महीनों में तीन सौ विद्यार्थी इस स्कूल में प्रवेश कर चुके थे। हरि ने अब प्रतिज्ञा कर ली कि वे ब्रिटिश शासन की सेवा कभी भी नहीं करेंगे। स्कूल में स्वतंत्रता तथा ज्ञान का वातावरण छा गया। जब तक हरि मैट्रिक की कक्षा में पहुँचे वे मिल्टन, शेक्सपियर, स्काट, शेली कीट्स, जेन आस्टेन, डिकन्स, थैकरे तथा साथ ही मोलियर के नाटकों के अंग्रेजी अनुवादों को भली भांति पढ़ तथा समझ सकते थे।

विष्णु शास्त्री, जिन्होंने न्यू इंगलिश स्कूल की स्थापना की थी, का स्वर्गवास दुर्भाग्यवश १७ मार्च, १८८२ को हो गया। हरि को उसका समाचार मिला। वे इस महान् विद्वान् तथा देश-भक्त की मृत्यु से बहुत दुखी हुए। वे शव-यात्रा के साथ गए और लौटते समय जो कुछ उन्होंने देखा तथा अनुभव किया था उससे वे बहुत ही सन्तप्त हो गए। उन्होंने चिपलूणकर के देहावसान पर ८९ छन्दों का एक शोकगीत लिखा जिसका शीर्षक था "शिष्यजन-विलाप"। इस कविता का प्रकाशन हुआ और दो दिनों में एक हज़ार प्रतियाँ बिक गईं। इन छन्दों का पाठ स्कूल में हुई उस सभा में हुआ जो इस देश-भक्त को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए की गई थी। सारा प्रथम संस्करण एक महीने के अन्दर बिक गया। हरि को इस छोटी-सी रचना से लोग भलीभांति उन्हें जान गए।

स्कूल के दो अन्य अध्यापकों, आगरकर तथा तिलक पर, जो केसरी और

'मराठा' का सम्पादन करते थे, बहुत शीघ्र एक दूसरी विपत्ति आई। सत्रह जुलाई, १८८२ को उन्हें न्यायालय द्वारा कोल्हापुर के 'वर्वे दीवान' वाले मशहूर मामले में चार महीने के कठोर कारावास का दण्ड मिला। हरि और उनके मित्रों ने इन दोनों देश-भक्तों के लिए कोष एकत्रित करने का महान् प्रयास किया तथा इस प्रकार के अन्याय के विरुद्ध सदैव संघर्ष करने वाले इन दोनों महापुरुषों के प्रति अपनी अपार निष्ठा प्रदर्शित की। लेकिन इस सबसे उनकी शिक्षा की उपेक्षा हुई और उस वर्ष की बम्बई मैट्रिकुलेशन की परीक्षा में न भेजे जा सके। परन्तु अगले वर्ष १८८३ में, उन्होंने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास कर ली।

स्कूल में पढ़ते हुए हरि ने शेक्सपियर, कालिदास और भवभूति पर आगरकर द्वारा लिखे हुए तुलनात्मक मूल्यांकन को पढ़ने के बाद एक लेख लिखा। आगरकर ने कालिदास को आखिरी स्थान दिया था। हरि ने इसके उत्तर में कालिदास की संक्षिप्त तथा सरस शैली की तुलना भवभूति की शब्दाडम्बर पूर्ण दीर्घसूत्री शैली से की तथा यह कहा कि कालिदास द्वारा करुणा का चित्रण भी समान रूप से प्रभावशाली है, और कालिदास द्वारा प्रेम का वर्णन भवभूति से अधिक काव्यात्मक है। अपने मत की पुष्टि करने के लिए उन्होंने उसका समर्थन करनेवाले अन्य लोगों के विचार और पाठों में से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए।

लगभग इसी समय हरि ने लांगफैलो की 'साम ऑफ़ लाईफ़' का अनुवाद किया। बाद में इसे सरकारी स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में स्थान मिल गया। अब तक वे संस्कृत से भी बड़ा अच्छा अनुवाद करने लगे थे।

एक वर्ष बाद, १८८२ में, उन्होंने एक और प्रसिद्ध लेख लिखा जो आगरकर के 'विकारविलासिता' (शेक्सपियर के 'हैमलेट' का अनुवाद) की ७२ पृष्ठों की एक आलोचना थी। आगरकर विशाल हृदय थे। उन्होंने हरि की आलोचना का स्वागत किया। आगरकर को इस बात का गर्व था कि उन्हीं के एक विद्यार्थी ने यह आलोचना लिखी थी।

हरि की दादी अपनी सबसे वड़ी लड़की मनुताई के विधवा होने के वाद तथा अपने लड़के अण्णा साहेव (हरि के चाचा) के स्वेच्छाचारी जीवन के कारण वहुत दुखी रहती थीं। वे अब अपना अधिकांश समय पूजा-पाठ में लगाने लगीं। हरि उनके सबसे प्यारे पौत्र थे। हरि के लिए उनकी पसन्द की स्वादिष्ट चीज़ों के छोटे-छोटे टुकड़े भी वे वचाकर रख लिया करती थीं। हरि भी अपनी दादी को वहुत प्यार करते थे, तथा रोज उनसे कुछ देर अवश्य वातचीत करते थे। इसमें कभी चूक नहीं होती थी। रोज शाम को वे उनसे दो-एक कहानियाँ अवश्य सुनते। वुआ दादी आप्टे परिवार के घर का संचालन वड़े ध्यान तथा निष्ठा के साथ करती थीं। घर पर लगभग उन्हीं का शासन था।

हरि की अवस्था अब सोलहवें वर्ष तक पहुँच गई थी तथा उन दिनों के चलन के अनुसार वे अब विवाह की आयु के हो गए थे। उनके पड़ोसी श्री दामोदर पन्त गोखले की कन्या माथू से उनकी मंगनी की घोषणा पहले ही हो चुकी थी। विवाह की तिथि १६ मई, १८७९ निश्चित की गई।

प्रचलित प्रथा के विपरीत हरि की दादी की आज्ञा के अनुसार दहेज स्वीकार नहीं किया गया। परन्तु गोखले परिवार ने सभी सम्वन्धियों को वहुमूल्य उपहार दिए। विवाह संस्कार काफी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। हरि इसके वाद सदैव ही 'तात्या' के नाम से पुकारे जाने लगे।

किशोरी पुत्रवधू माथू को अपने नए घर में वहुत मान मिला। वह अभी छोटी थीं और अपने माता-पिता की अत्यन्त लाड़ली थीं। शाम को वह अपने माता-पिता के घर चली जाया करती थीं तथा प्रातःकाल अपने ससुराल आ जाया करतीं। यह क्रम लगभग पूरे पाँच वर्षों तक चलता रहा। विवाह के पहले वर्ष भर दोनों घरों में भोजों का दौर चलता रहा। माथू से अब कहा गया कि धीरे-धीरे घरेलू काम-काज संभालना शुरू करे। वे इस प्रकार के कार्यों की आदी न थीं। सीखने में उनको समय लगता था और परिवार की अन्य काम-काजी वहुओं की तुलना में

वह पीछे रह जाती थीं। परन्तु साधारणतः वे अपनी मजबूरी के कारण क्षमा पा जाती थीं।

अब हम हरि की विचार-प्रक्रिया को समझें। वे अपनी नव-विवाहिता पत्नी को सर्वगुण-सम्पन्न बनाना चाहते थे। अभी तक वे अशिक्षिता थीं। वे यह अनुभव कर चुके थे कि यदि सांस्कृतिक रूप से भारत को विकसित बनाना है तो स्त्रियों को अनपढ़ नहीं रहने दिया जा सकता है। शिक्षा की वर्तमान पद्धति से पूर्व भारत में स्त्रियाँ वास्तव में अशिक्षित नहीं थीं। केवल शिक्षा की धाराएँ अलग थीं तथा उद्देश्य भी अलग थे। वे अपने कर्तव्यों को भलीभांति जानतीं थीं, कुशल गृहणियाँ थीं, व्यवहार और बातचीत में भद्र तथा मधुर थीं और उच्च रूप से सुसंस्कृत थीं। आधुनिक विज्ञान, इतिहास या भूगोल के बारे में शायद उनका ज्ञान उतना नहीं था। इसे सिद्ध करने के लिए ऐतिहासिक उदाहरणों के उद्धरणों की आवश्यकता नहीं है। मिल की "सबजेक्शन ऑफ़ वीमेन" (स्त्रियों द्वारा गुलामी) जैसी पुस्तकों को पढ़ने से शिक्षित युवकों के मन में यह इच्छा भी जागृत हुई कि वे स्त्रियों को आधुनिक अर्थ में शिक्षित बनाएँ तथा उनके कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों के प्रति उन्हें अधिक जागरूक बनाएँ। हरि को मिल के विचारों ने विशेष रूप से आकर्षित किया। उनके सामने श्रीमती काशीताई कानिटकर (कालेज के एक मित्र की बहन) का उदाहरण था जो अपने गृहकार्यों को करने के साथ-ही-साथ अपने पति की सहायता से घर की पुरातन पंथी महिलाओं के विरोध के बावजूद अंग्रेजी और मराठी सीख गई थीं। हरि को उनकी उपलब्धियों पर गर्व था तथा वे चाहते थे कि उनकी पत्नी इस उदाहरण का अनुकरण करे। इस उद्देश्य से उन्होंने उन्हें पढ़ाना आरम्भ कर दिया। उनकी पत्नी को इस मामले में अधिक उत्साह नहीं था। घर की महिलाओं का दृष्टिकोण रूढ़िवादी था। वे अंग्रेजी की शिक्षा को ही नहीं बल्कि समस्त शिक्षा को अनावश्यक समझती थीं, और उनकी यह धारणा थी कि शिक्षा से आचरण भी बिगड़ जाता है। उनका विश्वास था कि उनकी गृह-कार्य करने की क्षमता तथा

बच्चों के पालन-पोषण का कर्तव्य पुस्तकों के अध्ययन से कहीं अधिक महत्व-पूर्ण है। अब हरि की पत्नी के लिए घर की स्त्रियों को, जिनके साथ उन्हें अपना अधिकाँश समय व्यतीत करना होता था, प्रसन्न करना तथा साथ ही अपने पति की उत्साहपूर्ण इच्छाओं का पालन करना कठिन प्रतीत हो रहा था। शनिवार तथा रविवार को जब वे घर पर रहा करते थे, कालेज से आकर माथू को पढ़ाने की कोशिश करते थे; लेकिन वांछित परिणाम नहीं निकल रहा था। सप्ताह के अन्त तक वह सब कुछ भूल जाती थीं, क्योंकि उन्हें पाठ को दोहराने का कोई भी समय नहीं मिल पाता था। हरि ने उनका परिचय श्रीमती काशीताई कानिटकर से करवा दिया और उनसे जितना अधिक सम्भव हो सके, मिलते रहने को कह दिया। यह भी वे न कर पाईं, क्योंकि अपने घर के रूढ़िवादी अनुशासन के कारण बूढ़ी स्त्रियों को रुष्ट किए बिना समय निकाल पाना सम्भव नहीं था। इन बातों से नव-विवाहित युवती में अत्यधिक, अतृप्ति, असन्तोष तथा कुंठा भर गई। हरि भी हत्प्रभ हो गए और स्थिति को सुधारने के लिए कुछ न कर पाए।

उन्होंने १८८३ में न्यू इंगलिश स्कूल को डेकन कालेज, पूना में कार्य करने के उद्देश्य से छोड़ दिया। डेकन कालेज शिक्षा का प्रख्यात केन्द्र था। उन दिनों में कालेज को अपने विशाल भवन, श्रेष्ठ अंग्रेज अध्यापकों, अच्छे पुस्तकालय, उत्तम छात्रावास तथा विशाल खेल के मैदान तथा तैराकी और नाव चलाने की व्यवस्था के कारण गर्व हो सकता था। यहाँ हरि ने निर्धारित पाठ्यक्रम से बहुत अधिक पढ़ना आरम्भ कर दिया। हरबर्ट स्पेन्सर और जे० एस० मिल की पुस्तकों के प्रति वे बहुत आकर्षित हुए। जिन अन्य लेखकों को उन्होंने पढ़ा उनमें बेकन, बर्क, स्कॉट, जॉन्सन, मैकाले तथा जेन आस्टेन थे। उन्होंने थैकरे, डिकेन्स, स्कॉट तथा आस्टेन के लगभग सभी उपन्यास पढ़ डाले। एक लेखक रेनल्ड्स (अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में जिसका उल्लेख नहीं है) लगभग १९२० तक महाराष्ट्र और सम्भवतः सारे भारत में पाठकों में अत्यन्त लोकप्रिय था। उसकी

'मिस्ट्रीज़ ऑफ़ द कोर्ट ऑफ़ लन्डन', 'सोल्जर्स वाईफ़' तथा अन्य उपन्यास व्यापक रूप से पढ़े जाते थे। हरि ने भी रेनल्ड्स की पुस्तकें पढ़ीं। उन्होंने शेक्सपियर को पढ़ा तथा कालेज के प्रथम वर्ष में ही 'निबन्ध-चन्द्रिका' में 'रोमियो एण्ड जूलियट' पर एक लेख लिखा। वे स्वान्तः सुखाय राजनीति, धर्म, और दर्शनशास्त्र की पुस्तकों का भी अध्ययन किया करते थे। कालेज के अध्यापकों में विद्वानों की प्रतिष्ठित मण्डली-सी थी, जिनमें प्रोफेसर आक्सेन्हम, सेल्वी, फ़ॉरेस्ट, आर० जी० वैरेट और साथ ही एस० आर० भण्डारकर, शास्त्री वामनाचार्य झल्कीकर तथा अन्य थे। वी० के० राजवाडे (जो बाद में अंग्रेजी के प्रोफेसर हो गए) उस समय कालेज के दक्षिण फैलो थे। वहाँ के विद्यार्थी-जीवन में एक ऐसी स्वतंत्रता थी जो इस देश के विद्यार्थियों के लिए अब तक अज्ञात थी। विद्यार्थी अपने घरों से दूर थे, उनके ऊपर कोई भी पैतृक या धार्मिक नियंत्रण न था, वे अपनी इच्छा से कार्य करने तथा पढ़ने के लिए स्वतंत्र थे। वे अपने आयुवर्ग के लोगों से हिल-मिल कर अपनी इच्छा से बातें कर सकते थे या खेल सकते थे। इस स्वतंत्रता से साधारणतः अनेक अच्छे गुण विकसित होते हैं, यद्यपि कुछ विद्यार्थी इससे लाभ नहीं भी उठा पाते। हरि ने इस स्वतंत्र जीवन में पूरे हृदय से प्रवेश किया। वे कालेज में होने-वाली वाद-विवाद की प्रतियोगिताओं में भाग लेते परन्तु उनका मुख्य काम था वाचनालय में पढ़ना। वहाँ पर विद्यार्थियों का एक पुस्तकालय था जहाँ अभी तक मराठी साहित्य की पुस्तकें नहीं थीं। यह पूर्णतः हरि के यत्नों तथा प्रतिनिधित्व का परिणाम था कि अब विद्यार्थियों के पुस्तकालय में मराठी साहित्य की पुस्तकें भी रहने लगीं। इस कालेज में उन्होंने अनेक मित्र बनाये। हरि बहुत ही हाज़िरजवाब थे और लोगों में उनकी बहुत माँग रहा करती थी। हरि ने गोल्डस्मिथ की 'शी स्टूप्स टू कॉन्कर' में 'टोनी लम्पकिन' का अभिनय किया, जिसमें समर्थ तथा पांसे ने भी अन्य पात्रों का अभिनय किया। भारतीय खेलों में कम रुचि होते हुए भी टेनिस में उन्होंने अच्छी कुशलता प्राप्त कर ली तथा नाव की सैर का

भी आनन्द लेने लगे, हालाँकि उन्होंने स्वयं कभी भी नाव नहीं खेयी थी। वर्ष के अन्त में उन्होंने प्रारम्भिक परीक्षा दी, परन्तु गणित में वे अनुत्तीर्ण हुए। अतः वे विश्वविद्यालय की परीक्षा में बैठ नहीं सके। अब हरि के सामने एक समस्या थी। उनके सहपाठी आगे निकल गए थे और वे पिछड़ गए। अतः उन्होंने हाल ही में खुले फरगुसन कालेज में प्रवेश करने का निश्चय किया। यहाँ ख्यातिनामा प्रोफेसर वामन शिवराम आप्टे (संस्कृत के विद्वान्), जी० जी० आगरकर, वी० वी० केलकर तथा बी० जी० तिलक (बाद में 'लोकमान्य' के नाम से विख्यात) संस्कृत, इतिहास, अंग्रेजी, गणित तथा अन्य विषय पढ़ाते थे। हरि को प्रोफेसर केलकर का अंग्रेजी अध्यापन बहुत पसन्द आया। बाद में दोनों में जीवन-पर्यन्त मित्रता हो गई और साहित्य पर अक्सर वे अपने विचारों का विनिमय करते रहते थे। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, लोग उन दिनों रेनल्ड्स[1] की पुस्तकें पढ़ा करते थे तथा जब हरि डेकन कालेज में थे तब हरि ने 'मिस्ट्रीज़ ऑफ़ द कोर्ट ऑफ़ लन्डन' पढ़ा था। अब उन्होंने इसके प्रथम दो अध्यायों का अनुवाद कर डाला। उनके मित्रों ने इस प्रयास को पसन्द किया। श्री वैद्य इसे "पूना वैभव" पाक्षिक पत्र के सम्पादक के पास ले गए और उन्होंने उसी समय अनूदित अध्यायों को अपने पत्र के परिशिष्टांक के रूप में 'मधली स्थिति' (मध्य रंग) के नाम से प्रकाशित कर दिया। इस प्रकाशन से काफ़ी सनसनी फैल गई। रावबहादुर वी० एम० महाजनी तथा रावबहादुर के० एन० साने ऐसे ख्यात लेखकों ने सम्पादक को पत्र लिखकर अज्ञात लेखक को बधाई दी। 'नाट्य कथार्णव' के सम्पादक ने भी लेखक को यह कहते हुए बधाई दी कि वे हर नये अध्याय को पढ़ने को प्रतीक्षा करते हैं। 'पूना वैभव' के इसी अंक में (जिसमें उनके प्रथम

---

१. **रेनल्ड्स के उपन्यासों में से अनेक का अनुवाद मराठी में हुआ था। यह रेनल्ड्स अंग्रेजी साहित्य के इतिहासों में उल्लिखित नहीं है, परन्तु अपने समय में वह लोकप्रिय था।**

अध्यायों का प्रकाशन हुआ था) हरि ने उपन्यास के उद्देश्यों पर एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने उपन्यास की विक्टोरियन धारणा को प्रस्तुत किया; अर्थात् यथार्थवादी चित्रण के द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक हित का आदर्श प्रस्तुत करना। हरि का उपन्यास वास्तव में उसे प्रकाशित करनेवाले पत्र की रूढ़िवादिता के विपरीत था परन्तु जनमत उपन्यास के प्रकाशन के इतना अधिक पक्ष में था कि वह प्रकाशित होता ही रहा। और इसके प्रकाशन से सम्पादक को दूसरी तरह की प्रसन्नता का अनुभव हुआ। कारण, एक वकील, एक डाक्टर, एक सामन्तवादी जमींदार, एक कंजूस महाजन का फ़िज़ूलखर्च युवक पुत्र आदि कुछ ऐसे पात्र इसमें थे, जो पूना में रहने वाले उस जमाने के कुछ व्यक्तियों से बिल्कुल मिलते-जुलते थे। पढ़नेवाले लोगों को उपन्यास ने अत्यन्त उत्तेजित कर दिया तथा सारे महाराष्ट्र में उसकी चर्चा होने लगी। यह उन दिनों के महाराष्ट्र समाज के विभिन्न वर्गों और स्तरों का अद्भुत चित्र था। लेखनी द्वारा खींचे गए चित्र आश्चर्यजनक रूप से प्राणवान थे। वेश्या के घर के जीवन का इतना सुन्दर वर्णन हुआ था कि एक मशहूर वेश्या अत्यन्त प्रभावित हुई थी। बहुत लम्बे समय तक हरि के परिवार वालों को हरि के कृतित्व के बारे में पता नहीं लगा (जैसे फैनी बर्नी के पिता को उसके द्वारा "ईवलीन" का लिखना नहीं ज्ञात था अथवा शारलट ब्रांटे के पिता को उसके द्वारा 'जेन आयर' की रचना का ज्ञान न था)। इस प्रकार से हरि को इस प्रकाशन द्वारा बहुत बड़ी मान्यता मिली। परन्तु वे कालेज की पढ़ाई के प्रति उदासीन रहे तथा गणित के प्रथम वर्ष की परीक्षा में पुनः अनुत्तीर्ण हो गए। उनकी असफलता से उनके चाचा अत्यंत निराश हो गए और उन्होंने हरि को आज्ञा दी कि वे पुनः डेकन कालेज में चले जाएँ। यहाँ वे प्रारम्भिक परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और विश्वविद्यालय की परीक्षा के लिए भेज दिये गए। परन्तु वे फिर से गणित में तृतीय बार अनुत्तीर्ण हुए, वैसे उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी और अन्य विषयों में अच्छे अंक प्राप्त किये। बाद में वे दो बार और विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में भूतपूर्व छात्र के

OF ADVANCED
No. 31675
10.6.69

रूप में बैठे परन्तु सफलता नहीं मिली, और अन्त में १८८६ में उन्होंने कालेज छोड़ने का निश्चय कर लिया तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा से अन्तिम विदा ले ली। उनके चाचा अत्यन्त अप्रसन्न हुए और उन्हें राव-बहादुर कानिटकर से बात करने का अवसर मिला जो उनके भतीजे की साहित्यिक योग्यताओं को अत्यन्त मूल्यवान समझते थे। उन्होंने कानिट-कर से आग्रह किया कि हरि को बी० ए० तथा एल० एल० बी० करने को तथा उनके साथ बम्बई हाईकोर्ट में कार्य करने को प्रेरित करें। इससे हरि के परिवार के भविष्य के सम्बन्ध में उनके चाचा की चिन्ता का बोझ हल्का होता, परन्तु ऐसा नहीं होना था और हरि ने १८८६ में कालेज-शिक्षा से अन्तिम हताशपूर्ण विदाई ले ली।

श्री कानिटकर से, जो बम्बई में वकील के रूप में कार्य कर रहे थे, हरि का परिचय उनके चाचा के घर में १८८३ में हुआ था। वे हरि से लगभग बारह वर्ष बड़े थे, परन्तु साहित्य में उनकी रुचि उन्हें एक दूसरे के निकट ले आई तथा दोनों में मित्रता स्थापित हो गई। कानिटकर बाद में सब-जज होकर बम्बई से चले गए, परन्तु यह मित्रता १९१७ तक क़ायम रही। आगरकर द्वारा हैमलेट का मराठी अनुवाद जब आर्यभूषण प्रेस, पूना में छप रहा था, तभी उसे पढ़ने का अवसर कानिटकर और हरि को मिला।

उन्होंने सोचा कि इससे भी अच्छा अनुवाद किया जा सकता है। दोनों मित्रों ने निर्णय किया कि कानिटकर एक महीने में यह अनुवाद कर डालें। यह भी तय हुआ कि पुस्तक उसी प्रकार के टाइप तथा बढ़िया कागज पर उसी ढंग में छपे। बाद में अपने उपन्यास 'गणपत्र' में हरि ने विष्णुपन्त तथा लक्ष्मीबाई के चरित्र का अंकन कानिटकर-दम्पति के आधार पर किया।

श्रीमती कानिटकर ने एक उपन्यास 'रंगराव' लिखना प्रारम्भ किया था। जब उन्होंने हरि का 'मधली स्थिति' पढ़ा तो वे हतोत्साहित हो गईं, क्योंकि उन्होंने सोचा कि उनका उपन्यास हरि की साहित्यिक प्रतिभा

से होड़ नहीं ले पाएगा और न ही उसके सामने टिक सकेगा। जब हरि को इसका ज्ञान हुआ तो उन्होंने एक पत्र लिखकर उपन्यास समाप्त करने का आग्रह किया। पत्र निस्सन्देह श्रीमती कानिटकर की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा से भरपूर था, परन्तु इससे उन्हें साहस मिला तथा उन्होंने अपनी रचना समाप्त कर डाली।

था। इस पत्रिका के सामने कुछ कठिन
दोनों—'मनोरंजन' और 'निवन्ध-चन्द्रि
मिला दिए गए। इस संयुक्त पत्रिका व
आप्टे ने अपना सामाजिक उपन्या
'चाणक्षोपानच कलस' (चतुरता की स
'श्रुतकीर्तिचरित्र' तथा 'सुमति विजय
विक्टर ह्यूगो के 'हेरनानी' तथा शेक
आधारित) प्रहसन—'मारून मुटकुन
लघु कहानियाँ, एक निवन्ध तथा कुछ
कीं। जब कानिटकर नेवास (अहमदन
आप्टे इस परिवार के साथ छः सप्ताह त
शेक्सपियर तथा तुकाराम जैसे अंग्रेजी
स्पेन्सर के दार्शनिक विचारों, सामाजि
संसार के लगभग सभी विषयों पर विच

कालेज सदैव के लिए छोड़ने के बाद

प्रकाशन संस्था आरम्भ करनी चाही। श्रीमती कानिटकर को लिखे गए पत्रों में से एक में हमें इसका प्रमाण मिलता है। कुलकर्णी आणि मण्डली (कुलकर्णी एण्ड को०) नामक इस संस्था के पांच संस्थापकों में से एक आप्टे भी थे। आत्मकथाओं की एक शृंखला के प्रकाशन की बातचीत हुई थी। आप्टे 'करमणुक' नामक एक साप्ताहिक पत्र चलाना चाहते थे क्योंकि वे चाहते थे कि महाराष्ट्र के कम पढ़े-लिखे लोग मनोरंजन तथा शिष्ट साहित्य पढ़ सकें। उनके मतानुसार राजनीति सब लोगों के लिए सर्वस्व तथा सर्वान्त नहीं हो सकती और उसकी आवश्यकता को पूरा करने के लिए हाल ही में तिलक द्वारा आरम्भ की गई पत्रिका 'केसरी' तथा आगरकर द्वारा प्रकाशित 'सुधारक' जैसी पत्रिकाएं थीं।

आप्टे आत्मसम्मान वाले व्यक्ति थे। जब उनके चाचा को ज्ञात हुआ कि वे एक प्रकाशन संस्था आरम्भ करना चाहते हैं तो उन्होंने लिखा कि वे इस प्रयास में सहायता नहीं कर पाएँगे। आप्टे की अपने चाचा से बड़ी गरम बहस हुई और उन्होंने अपने चाचा से कह दिया कि वे अपनी योजना का भार कभी उन पर लादना नहीं चाहते हैं और न ही उन्हें उनसे किसी आर्थिक सहायता की आवश्यकता है। उनकी स्वतन्त्रता और आत्म-सम्मान की भावना का आभास एक और घटना से मिलता है। 'आनन्दाश्रम' के आरम्भ होने के बाद वे आश्रम के अहाते में ही रहते थे। उनके मित्रों का क्षेत्र बड़ा व्यापक था जो उनके यहाँ एकत्रित होते थे। एक बार उनके चाचा ने उन्हें इस संगति में देखा। इस प्रकार समय का अपव्यय करने के लिए उन्होंने अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की। आप्टे ने उसी समय पड़ोस में अपने लिए एक कमरा किराये पर ले लिया। उनके चाचा को इस बात को जानकर दुख हुआ तथा उन्होंने अपनी बात समझाते हुए एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अपने भतीजे को सलाह दी कि वह सामाजिक सुधारकों, धनी आलसी व्यक्तियों, अथवा रावसाहबों तथा रावबहादुरों से दूर रहा करें। उनके चाचा वास्तव में सच्चे मित्रों के विरुद्ध नहीं थे और उनकी सलाह समय के अनुकूल ही थी।

स्वभाव से आप्टे किसी प्रकार के निंदापूर्ण शब्द और गाली के प्रयोग के विरुद्ध थे। वे लोकहितवादी (गोपालराव हरि देशमुख) ज्योतिवा फुले अथवा आगरकर जैसे उस युग के प्रख्यात सुधारकों की पद्धतियों को स्वीकार नहीं करते थे। वे सोचते थे कि लोगों को वांछित कार्य करने के लिए अनुकूल बनाना तथा प्रेरित किया जाना चाहिये, जिससे वे समाज के हित में अपना योगदान दें। उनके 'करमणूक' साप्ताहिक के आरम्भ करने की यही पृष्ठभमि थी। आप्टे उस समय केवल चौबीस वर्ष की आयु के थे और स्वभावतः वे आशावादी भी थे। उनके विचार स्पष्ट तथा स्थिर होते जा रहे थे। उनकी सत्यनिष्ठा ने उन्हें अपने इच्छित कार्यों को करने को प्रेरित किया जिससे कि उनके चारों ओर का पतनोन्मुख समाज सुधरे तथा अन्ततोगत्वा भारतीय राजनैतिक स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त हो। उनकी लेखनी अन्त में अपने इस उद्देश्य को पूरा करने में सफल हो गई।

'करमणुक' का प्रथम अंक शनिवार, ३१ अक्टूबर, १८९० को निकला जो विजयदशमी का दिन था। बाद में इसका प्रकाशन हर शनिवार को ही होता था। इसके प्रथम पृष्ठ पर एक संस्कृत का उद्धरण था जिसमें कहा गया था कि "दूसरे लोग चाहे कड़े शब्दों का प्रयोग करें या अपने मामलों पर तर्क करें हम केवल मधुर शब्दों का प्रयोग करना पसन्द करते हैं (और इस प्रकार से अपने पाठकों को प्रसन्न करते हैं)"। प्रथम अंक में इस बात की भी घोषणा कर दी गई कि 'करमणुक' की इच्छा केवल साँसारिक ज्ञान को फैलाना ही नहीं है, बल्कि उनके साथ ही आधुनिक विज्ञान का ऐसी भाषा में प्रसार करना भी है जो लोगों को पसन्द हो तथा जिसमें लोग अभिरुचि लें। परन्तु साथ ही वह न तो हल्का और असंयत हो और न ही अत्यन्त तकनीकी हो, जिससे कि इस साप्ताहिक को पुरुष, स्त्री और बालक बिना किसी संकोच के पढ़ सकें। घोषणा में कहा गया कि पत्रिका में पाश्चात्य तथा पूर्वदेशीय साहित्य के श्रेष्ठतम नाटक तथा कथा-साहित्य के अनुवाद भी प्रकाशित होंगे। यह पत्र उन सब को मनोरंजन प्रदान करेगा जो पढ़ सकेंगे या पढ़ेंगे। साप्ताहिक पत्र में छोटी तथा बड़ी कहानियाँ, शैक्षणिक महत्व

के वैज्ञानिक समाचार, नाटक, हास्य और व्यंग्य, महान् व्यक्तियों की जीवनियां, यात्रा-विवरण, कविताएँ, महिलाओं का पृष्ठ, खेल-कूद के समाचार, साप्ताहिक समाचारों की समीक्षा तथा अन्य उपयोगी विषय सम्मिलित किये जानेवाले थे।

आप्टे का उपन्यास 'पण लक्षात कोण घेतों' (परन्तु कौन परवाह करता है) 'करमणुक' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। ध्यान देने पर यह बात दिलचस्प मालूम होती है कि इस पत्र के प्रथम सात वर्ष के लगभग सभी अंकों में प्रख्यात कवि केशवसुत की कविताएँ रहती थीं। जस्टिस के० टी० तेलंग, प्रोफेसर वी० वी० केलकर, श्रीमती रमाबाई रानाडे, (जस्टिस एम० जी० रानाडे की धर्मपत्नी), श्रीमती काशीबाई कानिटकर तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने पत्रिका की भूरि-भूरि प्रशंसा की। पत्रिका के अगले बारह वर्षों में आप्टे के अनेक उपन्यासों का धारावाहिक प्रकाशन हुआ--"मी भयंकर दिव्या' (भयंकर परीक्षा) 'जग हे असे आहे (यह संसार है), 'मैसूर चा वाघ' (मैसूर का सिंह अर्थात् टीपू सुलतान), 'केवल स्वराज्य साथी' (केवल स्वराज्य के लिए)। आप्टे के अन्य सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यास और नाटक भी इसी साप्ताहिक में प्रकाशित हुए। इसका प्रकाशन सत्ताईस वर्षों तक होता रहा तथा आप्टे ने इस पत्र को अपने वचन के अनुसार अच्छा ही रखा। अनेक महिलाओं ने अपनी रचनाएँ इस पत्र में प्रकाशित करवाईं तथा बहुत से युवा लड़के और लड़कियाँ इसके वार्षिक ग्रंथ खण्डों को पढ़ने में बहुत समय तक रुचि लेते रहे। पुराने ग्रन्थ खण्डों में भी लोगों को आनन्द आता था।

लगता है कि इस समय तक आप्टे ने अपने मन में यह निर्णय कर लिया था कि वे लेखक बनेंगे। परन्तु यह पेशा इस प्रकार का नहीं था कि जिससे वे अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए समुचित आय अर्जित कर पाते। अतः उन्होंने अध्यापन करने के बारे में विचार किया जो कि उन लोगों का सहारा था, जो और कुछ नहीं कर सकते थे। परन्तु इस सम्बन्ध में सम्भावनाएँ उत्साहवर्धक नहीं थीं। उनके चाचा चाहते थे

कि वे अपनी कानून की डिगरी प्राप्त करके वकील बन जाएँ परन्तु वे विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष में भी उत्तीर्ण होने में असफल रहे थे। उनके पिता भी आप्टे की असफलताओं को समझ नहीं पा रहे थे। एक वार दोनों ने जानने का प्रयत्न किया, परन्तु आप्टे ने व्यंग्य से उनको आश्वासन दिया कि वे धन कमाना चाहते हैं, हालाँकि वे कहीं भी नौकरी नहीं कर रहे थे। उनके चाचा ने सुझाव दिया कि वे मुद्रणालय में काम करने के बाद मुद्रण के व्यवसाय में लग जाएँ। इस प्रकार उन्हें चाचाजी के प्रयासों द्वारा जगदीश्वर प्रेस में प्रशिक्षण के लिए रखा गया। परन्तु वे मुद्रण की परीक्षा में भी उत्तीर्ण न हो पाए। वे अपने-आपको यह विश्वास ही नहीं दिला पाए कि उन्हें अपने पूरे जीवन भर एक मुद्रणालय के नीरस वातावरण में काम करना चाहिए। उनके चाचा ने एक प्रकाशन संस्था आरम्भ करने के लिए समुचित पूंजी का प्रबन्ध करने का प्रस्ताव किया, पर इसे भी आप्टे ने अस्वीकार कर दिया। परन्तु उनके चाचा ने, जो अब तक अच्छी आय अर्जित कर रहे थे, अपने भतीजे की साहित्यिक उपलब्धियों के बारे में विचार किया, विशेष रूप से उनके संस्कृत के उत्तम ज्ञान के बारे में। उन्होंने अपने बड़े भाई को वचन दिया कि लड़के के लिए एक संस्था की स्थापना करेंगे ताकि वह अपनी साहित्यिक प्रतिभा का उपयोग कर सके। चाचा भी पूरे परिवार की अच्छाई के लिए कुछ न कर पाने की कुंठा से पीड़ित थे, इसीलिए उन्होंने 'आनन्दाश्रम' नामक एक ट्रस्ट के निर्माण के बारे में सोचा, जहां वे एक तरह से अपनी अधार्मिक प्रवृत्ति का प्रायश्चित्त कर सकते। इस प्रस्तावित संस्था की मुख्य विशेषताएं थीं, एक मुद्रणालय जहाँ धार्मिक साहित्य तथा प्राचीन संस्कृति के ग्रन्थ प्रकाशित किये जाएँ, विद्यार्थियों तथा भ्रमण करने वाले साधु-संन्यासियों के लिए एक आवास, जहाँ ठहरने तथा भोजन का प्रबन्ध हो तथा एक शिवालय। भवन के लिए भूमि नगर के बीच में ५००० रु० में शीघ्र ही खरीद ली गई तथा संस्था के लिए भवन का निर्माण दो वर्षों में पूर्ण कर लिया गया। 'वास्तु शान्ति' समारोह (मकान को पवित्र करना तथा दुष्ट ग्रहों से मुक्त रखना) का कार्य आप्टे

ने कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा, शक १८१० (ईसवी १८८८ के कार्तिक शुक्ल पक्ष का प्रथम दिवस) को सम्पन्न किया तथा मुद्रणालय का उद्घाटन भी हो गया। इस प्रकार 'आनन्दाश्रम' की स्थापना हो गई। जव इस संस्था की नियमावली का प्रथम प्रकाशन १७ मई १८८७ को हुआ तव 'केसरी' ने ३१ मई १८८७ के अग्रलेख में इस प्रयास का स्वागत किया तथा धार्मिक एवं संस्कृत के ग्रन्थों के प्रकाशन के प्रवन्ध के लिए श्री एम० सी० आप्टे की प्रशंसा की। उनके चाचा ने संस्था के संचालन के लिए अव हरि को सूक्ष्म निर्देशों की पूर्ण शिक्षा दी। आप्टे को संस्था का प्रवन्ध-कार्य सौंपा गया और इसके अतिरिक्त उन्हें आप्टे-परिवार के युवा लड़कों की प्रगति का भार भी सौंप दिया गया। आप्टे को अपना अध्यापन कार्य छोड़ना था तथा उन्हें वित्त, मुद्रण, पत्र-व्यवहार, पाण्डुलिपियों का संकलन, सम्पादन-कार्य, संस्था के वाचनालय, पाण्डुलिपियों और पुस्तकों के क्रय-विक्रय तथा आय-व्यय के मासिक हिसाव की व्यवस्था करनी थी। उन्हें अतिथियों का स्वागत करना था तथा आनन्दाश्रम के कार्य-कलाप के वारे में उन्हें समझाना था। सुवह ११ वजे से लगभग सायंकाल ५.३० वजे तक उनकी उपस्थिति आवश्यक थी। उन्हें शुरू-शुरू में ३० रुपए प्रतिमास वेतन मिलने वाला था तथा १०० रुपए तक इसकी वृद्धि होने वाली थी। इस प्रकार उन्हें एक समुचित आय का आश्वासन मिल गया। आप्टे अव पूना में 'कौटुम्बिक पिता' वन गए थे। 'आनन्दाश्रम' संस्कृत ग्रन्थमाला का आरम्भ शुभकारी 'गणपति अथर्वशीर्षम' (गणपतिवन्दना) के मुद्रण से हुआ। एक मन्दिर भी वनवाया गया तथा इसमें ऐसा प्रवन्ध किया गया कि पूजा का पवित्र जल मन्दिर से प्रवाहित होकर उनके चाचा की 'समाधि' तक जाए और उसको पावन करे। इस प्रकार के समाधि-स्थान के लिए शासन से अनुमति पहले से ले ली गई थी। उनके चाचा का स्वास्थ्य १८९० से गिरने लगा था। अक्टूवर १८९४ में वापट कमीशन से सवंधित वड़ौदा के दौरों के कारण उनका स्वास्थ्य और भी गिरने लगा। उन्हें टायफाइड हो गया तथा चिकित्सा के वावजूद २२ अक्टूबर को उनका देहांत हो

गया। अपने संकल्प के प्रति सत्यनिष्ठा के कारण उन्होंने मृत्यु से पूर्व संन्यास ले लिया था। आप्टे वम्बई भागे और अन्त तक उनके साथ रहे। उनके शव को पूना ले जाया गया और संन्यासियों के लिए जैसी अन्त्येष्टि-क्रिया होती है, वह की गई। उसके वाद महादेव चिमनाजी को पूर्व निश्चित शवस्थान में भूमिगत कर दिया गया। आनन्दाश्रम शीघ्र ही समृद्ध होता गया और आज भी उसे अपने कार्यों को शान्तिपूर्वक तथा विना किसी आड-म्वर के करते हुए देखा जा सकता है। इस संस्था के कारण संस्कृत का शिक्षण महादेव चिमनाजी आप्टे का ऋणी है। आप्टे ने ईमानदारी से अपने चाचा के प्रशिक्षण के आदेशों का पालन किया तथा हिन्दू सामाजिक सुधार के अपने विचारों के वावजूद अपने-आपको एक रूढ़िवादी हिन्दू के जीवन में वांध रखा तथा संस्था का विकास अपने प्रतिभावान चाचा की स्मृति में एक न्यास के रूप में किया, जिनकी तीक्ष्ण वुद्धि और दान के कारण उनका वाद का जीवन आराम से वीता।

इससे एक ख्याति-प्राप्त लेखक वनने में वे सफल हुए, अपने परिवार के उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके तथा साथ ही अपने संस्कृत के ज्ञान का उपयोग भारतीय संस्कृति के विकास के लिए कर सके।

आप्टे की पत्नी की वड़ी इच्छा थी कि वे लिखना-पढ़ना सीखें। उनके पति की भी ऐसी ही इच्छा थी। परन्तु उनके चारों ओर घर की पुरातन-पंथी तथा रूढ़िवादी महिलाएँ थीं, जिनके कारण उनके लिए खुलकर अध्ययन करना ही कठिन न था, वल्कि उनका मज़ाक भी उड़ाया जाता था और ताने कसे जाते थे। आप्टे वहुत चाहते थे कि उनकी पत्नी अच्छी शिक्षा प्राप्त करें और उनकी आकांक्षा थी कि वे लोगों से अच्छी तरह से वातचीत भी कर सकें। आप्टे आशा करते थे कि उनकी पत्नी यदि साहित्यिक विवादों में भाग न भी ले सकें तो भी कम-से-कम उनके मित्रों तथा उनकी पत्नियों के साथ सामाजिक कार्यों में सम्मिलित हो सकें, वातें कर सकें। कभी-कभी वे अपनी पत्नी को ऐसी वैठकों में या सार्वजनिक सभाओं में घर की अन्य स्त्रियों की जानकारी के विना ले जाया करते थे। परन्तु

वड़ी-वूढ़ियों को उनके घर वापस आने से पूर्व ही मालूम हो जाया करता था कि वे कहाँ गई थीं। पारिवारिक पवित्रता का विचार उन दिनों वड़ा ही कठोर—यहाँ तक की विकृत भी था और हालांकि माथू घर आने के वाद अपने कपड़े वदल लेती थीं, किंतु उन्हें घर में स्वतंत्रतापूर्वक घूमने और काम करने नहीं दिया जाता था, जिसका कारण इन रूढ़िवादी वूढ़ी महिलाओं की दुराग्रह हठधर्मिता थी। उन्हें स्वाभाविक रूप से यह सव वहुत वुरा लगता था। अतः अपने पति को प्रसन्न रखने की और साथ ही घर की रुढ़िवादी महिलाओं से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध वनाए रखने की उनकी इच्छा वहुत समय तक पूरी नहीं हो सकी। वे इन निषेधों के वीच अपने पाठ को पूरा नहीं कर पाती थीं और इस कारण वहुत दुखी रहतीं। माथू ने अनेक वार अपने पति से अनुरोध किया कि वे परिवार से अलग स्वतंत्र रूप से आनन्दाश्रम में रहें, जहाँ वे अपने जीवन को अपने विचारों और रुचि के आधार पर मुक्त रूप से ढाल सकें। परन्तु आप्टे संयुक्त परिवार के वृद्ध सदस्यों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहते थे और इस वात के लिए सहमत नहीं हुए। यह गतिरोध अनेक वर्षों तक वना रहा। वेचारी पत्नी रुष्ट और दुखी रहने लगीं। वे अत्यन्त कोमल और लज्जालु थीं तथा चुपचाप आँसू वहाया करती थीं।

उनकी पहली सन्तान की, जो एक पुत्र था, मृत्यु उसके जन्म के तीन महीने के अन्दर ही हो गई। फरवरी १८९१ में जव उनके दुवारा पुत्र उत्पन्न हुआ, आप्टे की पत्नी को प्रसूति ज्वर हो गया तथा सभी उपलब्ध चिकित्सा-सुविधाओं के होते हुए भी उनका स्वर्गवास हो गया। वच्चा माँ की मृत्यु के वाद भी जीवित रहा परन्तु अशक्त होने के कारण वहुत दिन तक न वच सका और करीव सात सप्ताह के वाद उसकी भी मृत्यु हो गई।

आप्टे को अपनी पत्नी और वाद में पुत्र की मृत्यु से गहरा आघात पहुँचा तथा वे अत्यन्त विक्षुब्ध हो गए। अंदर-ही-अंदर यह दुख उन्हें खाने लगा और परिणाम यह हुआ कि वे स्वयं वीमार पड़ गए। उनकी एकाएक साँस रुकने-सी लगती थी और मूर्च्छा आ जाती थी। अपनी स्वर्गवासी

पत्नी को स्वतंत्र जीवन की सुविधा प्रदान न कर पाने की अपनी असमर्थता का पश्चात्ताप बढ़ता गया। अपनी इन गलतियों तथा आदर्शवादी उत्साह के बारे में सोचने के लिए बहुत देर हो चुकी थी, जिनके कारण उनकी पत्नी को इतनी परेशानी, भय और दुख था। ऐसी स्थिति में प्रायश्चित करने के लिए उन्होंने शक्कर तथा पान खाना छोड़ दिया और ज़मीन पर चटाई बिछा कर सोना आरम्भ कर दिया। उनको पश्चात्ताप और दुःख की इस मनःस्थिति से निकलने में बहुत दिन लगे।

कानिटकर-दम्पति ने उस वर्ष के मई महीने में उन्हें अपने साथ महाबलेश्वर रहने को बुलाया। इस प्रवास में उन्हें स्वास्थ्य-लाभ करने में तथा कुछ हद तक अपनी उदासी दूर करने में सहायता मिली। वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों तथा कानिटकर-दम्पति के स्नेहपूर्ण व्यवहार ने कुछ सीमा तक उनके दुख को भुला दिया तथा श्रीमती कानिटकर के अनुरोध पर वे अपनी चाय और भोजन में शक्कर लेने लगे। महाबलेश्वर में उनकी भेंट महान् विद्वान् और सुधारक जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे से हुआ करती थी। वे उनके साथ भोजन किया करते थे तथा कानिटकर-दम्पति एवं आप्टे को अपने घर बुलाया करते थे। रानाडे चाहते थे कि आप्टे उनके एक सुधारवादी पुराने मित्र की बड़ी लड़की से विवाह कर लें और इस विषय में उन्होंने श्रीमती कानिटकर से बात की। वे बहुत ही समझदार स्त्री थीं और उन्होंने श्री रानाडे से कह दिया कि यह सम्बन्ध आप्टे को स्वीकार न होगा। कारण, उनका परिवार अत्यन्त रूढ़िवादी है। फिर भी, जब वे पूना लौट आए तो रोज ही उनके विवाह का कोई-न-कोई प्रस्ताव घर के लोग ले आते थे। वे उनकी मानसिक स्थिति तथा इस विषय में उनकी अनिच्छा को समझ नहीं पाते थे। उनके चाचा का उदाहरण, जो बम्बई में एक विधुर के रूप में रहे, परिवार के सामने था। उनके पिता और रिश्तेदार उनके भविष्य के सम्बन्ध में चिन्तित रहने लगे। उनकी दादी ने भी बहुत अधिक आग्रह करना आरम्भ कर दिया।

आप्टे उनका अधिक सम्मान करते थे तथा अन्ततः उन्हें उनको वचन

देना पड़ा कि वह उनकी अवज्ञा नहीं करेंगे और उनकी इच्छा को टालेंगे नहीं। परन्तु उन्होंने अनेक बार बाल-विवाह की प्रथा का विरोध किया था तथा वे कम अवस्था की किसी लड़की से (जैसी कि उन दिनों प्रथा थी) विवाह करने को राजी न हो सके। उन्होंने सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने का निर्णय ले लिया।

यहां इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि ४ अक्टूबर १८९० को श्री गोपाल राव जोशी ने उस मामले को उठाया जो 'पंच हौज़ मिशन' मामले के नाम से प्रसिद्ध है। उन्होंने एक भाषण दिया और उल्लिखित ईसाई मिशन, पूना में चाय का प्रबन्ध किया गया। आप्टे वहां पर फादर रिविंगटन के अधीन फ्रेंच भाषा सीख रहे थे। पूना के अनेक महत्वपूर्ण व्यक्ति, जैसे जस्टिस रानाडे, लोकमान्य तिलक, प्रोफेसर (बाद में ऑनरेबल) जी० के० गोखले, प्रोफेसर वी० बी० केलकर, प्रोफेसर पान्से, वासुदेवराव जोशी तथा अन्य आमंत्रित थे। उनमें से कुछ ने वहां पर चाय और बिस्कुट लिया। चूंकि आप्टे के रिश्ते के एक भाई की मृत्यु उसी दिन हुई थी, वे भाषण और चाय में सम्मिलित नहीं हो पाए। गोपालराव ने रूढ़िवादी पूना के पाक्षिक पत्र 'पूना वैभव' में उन सब लोगों के नाम प्रकाशित कर दिए, जिन्होंने इस समारोह में भाग लिया अथवा नहीं लिया था। राई का पहाड़ बनाने के परिणामस्वरूप पूना के कम-से-कम बयालीस परिवारों को रूढ़िवादी लोगों तथा पंडितों ने जाति से निकाल दिया। पंडितों ने धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करने से इन्कार कर दिया तथा निकट सम्बन्धियों, मित्रों तथा अन्य व्यक्तियों ने इनके घरों में आना-जाना बन्द कर दिया। इन परिवारों में सभी का जीवन, विशेष रूप से महिलाओं का, अत्यन्त दुखदायी हो गया। धार्मिक कृत्य सम्पन्न नहीं हो पा रहे थे, विवाहित लड़कियों को आमंत्रित नहीं किया जा सकता था। या आमंत्रित होने पर भी वे आ नहीं सकती थीं तथा कहा जा सकता है कि मां बाप और बच्चे एक दूसरे से पृथक कर दिए गए। इससे बहुत ही अप्रसन्नता व्याप्त हो गई तथा यह स्थिति तभी समाप्त हुई जब जस्टिस रानाडे ने आगे बढ़कर 'म्लेच्छों' के साथ

खाने-पीने के पाप का प्रायश्चित्त किया। दूसरों ने इसका अनुकरण किया और यह वहिष्करण दिसम्वर १८९२ में ख़त्म किया गया। आप्टे इसमें सम्मिलित नहीं हुए थे परन्तु उनका नाम 'पूना वैभव' की सूची में निकल चुका था। आप्टे के पिता नाना साहेब आप्टे के सम्मिलित होने की वात सुनकर वहुत नाराज हुए। आप्टे के घर पर सभी धार्मिक कार्य रुक गए। परिणामस्वरूप उनकी दादी वहुत वीमार हो गईं और अपनी अंतिम साँसें गिनने लगीं। एक आश्चर्यजनक संयोग का वर्णन किया जाता है जिसके अनुसार उनकी दादी उन्हें सपने में दिखलाई पड़ीं और उनसे कहा कि वे संसार से बिदा ले रही हैं। घवराहट से आप्टे की आँखें खुल गईं। नीचे आकर उन्होंने रात के चौकीदार से समय पूछा जिसने वताया कि सुवह के दो वजे हैं। एक मिनट के अन्दर ही उनके घर से एक सन्देशवाहक ने आकर उनकी दादी की मृत्यु का समाचार उन्हें सुनाया। वे 'आनन्दाश्रम' में रहा करते थे तथा भोजन के लिए अपने परिवार के पड़ोस के घर में जाया करते थे। उनके चाचा अण्णा साहेव वहिष्कृत होने के कारण वड़ी ही कठिनाई से ब्राह्मण पंडितों को वुला पाए। आप्टे अन्ततः शंकराचार्य कमीशन द्वारा निर्दोष सावित हुए क्योंकि चाय और विस्कुट खाना तो दूर वे तो वहाँ उपस्थित ही नहीं थे। आप्टे के चाचा ने भी इस तथ्य को प्रकाशित कर दिया था कि वे भाषण और चाय के अवसर पर उपस्थित नहीं हुए थे।

आप्टे वास्तविक रूप से स्त्री-शिक्षा में रुचि लेते थे और इसीलिए वे इस उद्देश्य से उठाए गए किसी भी कदम का समर्थन हृदय से करते थे। इसी कारण से उन्होंने पण्डित रमावाई (जिन्होंने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया था) तथा पूना में उनकी संस्था 'सेवासदन' के प्रयासों की प्रशंसा की। पूना के अन्य अनेक गणमान्य व्यक्ति, जैसे जस्टिस रानाडे, प्रोफेसर भण्डारकर, प्रिंसिपल आगरकर तथा जस्टिस के० टी० तेलंग भी 'सेवासदन' के शैक्षणिक कार्यक्रमों के प्रति सहानुभूति रखते थे। यह तो वाद को स्थापित हुआ कि रमावाई के कारण ही अनेक युवा हिन्दू लड़कियों को सेवासदन में ईसाई धर्म में दीक्षित करवा दिया गया और तभी अनेक हिन्दू

नेताओं ने इस गुप्त धर्म-परिवर्तनों की भर्त्सना की तथा धर्मान्तरण करने वाली इस ईसाई संस्था से अपने संबंध तोड़ दिए।

'आनन्दाश्रम' में आप्टे का कार्य उन्हें सामाजिक सुधार के उद्देश्य से किसी विधवा से विवाह करने की अनुमति नहीं देता था। साथ ही यदि वे किसी ऐसे विवाह के वन्धन में वंधते तो वे अपने सभी सम्वन्धियों से सदैव के लिए पृथक हो जाते। उनके घर के सम्बन्वी इस प्रकार के विवाह को रोकने के लिए ही इनका शीघ्र विवाह कर देने को आतुर थे। जब वे १८९१ में नागपुर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में गये तो उनकी नानी ने उनकी अनिच्छा के वावजूद उनसे यह वचन ले लिया कि वे किसी विधवा से विवाह नहीं करेंगे। परन्तु इस पर भी वे शीघ्र ही विवाह करने को सहमत नहीं थे। और उनके पिता, उनके चाचा तथा उनके अन्य सम्वन्धियों ने उनसे वात करना लगभग छोड़ ही दिया। चूंकि वे हास्यप्रिय थे और वातें करने में आनन्द आता था इसलिए इस वात से उन्हें कष्ट होने लगा। मामले को सुधारने के लिए कुछ करना था। उनके मित्र प्रोफेसर पान्से ने उनके लिए एक शिक्षित कन्या की खोज आरम्भ कर दी। उन्हें श्री चोलकर की शिक्षित कन्या वेणुताई वहुत जंची। यह विवाह फरवरी १८९२ में शान्तिपूर्ण तरीके से हो गया। कोई दहेज नहीं स्वीकार किया गया। वहू का नाम विवाह के उपरान्त रमा रखा गया। आप्टे के माता-पिता उन दिनों वेलगांव में थे। न तो वे ही विवाह में सम्मिलित हो सके और न ही आप्टे के चाचा, जिन्हें विवाह की सूचना नहीं दी गई थी। उन्हें विवाह के वाद सूचना दी गई तथा उन्होंने नव-विवाहित दम्पति का स्वागत वेलगांव में किया।

आप्टे के उन सुधारक मित्रों ने उनके इस कट्टर पंथी विवाह की बड़ी कड़ी आलोचना की, जो उनसे एक वास्तविक सुधारक की भांति किसी विधवा से विवाह करने की आशा करते थे। वे यह भूल गए कि जस्टिस रानाडे तक भी अपने सुधारवादी विचारों का निर्वाह नहीं कर सके थे। आप्टे के मामले में परिस्थितियाँ वहुत भिन्न नहीं थीं और उन्हें भी अपने परिवार

के उत्तरदायित्वों को ध्यान में रखना पड़ा था। वे केवल सुधार की खातिर उतावली से काम लेकर और सौजन्य, स्नेह और सहारा देनेवाले अपने पूरे परिवार को नष्ट नहीं कर सकते थे। अपने द्वितीय विवाह के वाद भी आप्टे का नैराश्य वहुत समय तक वना रहा और इस स्थिति से निकलने के लिए वे लेखन-कार्य में और अधिक स्फूर्ति के साथ जुट गए। वे भोजन करने तथा अपने स्वाभाविक ढंग से मनोरंजक वार्तालाप करने घर आया करते थे। परन्तु और सव चिन्ताओं के साथ अव उनको अपनी द्वितीय पत्नी की विमारी की भी चिन्ता लग गई। उनकी पत्नी भी अपने पति के नैराश्य से दुखी रहती थीं परन्तु उससे छुटकारा दिलाने के लिए कुछ भी कर नहीं पाती थीं। उन्हें चिमामावशी (आप्टे की वुआ) के कड़े अनुशासन के आधीन काम-काज करना पड़ता था। यदि उनके पति कभी उनके स्वास्थ्य एवं औषधि के वारे में जानकारी करना चाहते तो उस पर भी घर की पुरातन पंथी स्त्रियाँ टीका-टिप्पणी करतीं। इससे आप्टे की पत्नी को चोट पहुँचना स्वाभाविक था। उनके पिता ने अपने एक मित्र, डाक्टर आठ-वले से उनका इलाज करने को कहा। डाक्टर ने सलाह दी कि उन्हें सुवह दूर तक टहलना चाहिए परन्तु इससे स्थिति और भी विगड़ गई क्योंकि उन्हें इस टहलने के अतिरिक्त अपने नित्य के घरेलू कार्य भी करने ही होते थे। इन सव परिस्थितियों के कारण वे नैराश्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही थीं। पिता का यह सुझाव भी माना नहीं जा सका कि दम्पति को 'आनन्दा-श्रम' में रहना चाहिए। आप्टे स्वयं भी यह नहीं चाहते थे और वेणु की निराशा कुछ और वर्षों तक वनी रही। इसी वीच चिमामावशी की, जो परिवार की प्रधान वुआ थीं, मृत्यु १९०२ में जलोदर से हो गई। आप्टे उनकी मृत्यु के समय उनके पास उपस्थित नहीं रह सके, कारण वे पूना गये हुए थे। वैसे वे अनुशासन प्रिय थीं पर साथ ही निष्पक्ष भी थीं। उनकी मृत्यु से वेणु को और भी दुख मिलने लगा। वे पुनः वीमार पड़ गईं और तभी आप्टे को अपनी पत्नी के प्रति अचेतन में की गई अपनी उपेक्षा के दुखद परिणामों का अनुभव हुआ। आखिरकार वे उन्हें 'आनन्दाश्रम'

में ले गए। इस समय के उनके मनोभावों की अभिव्यक्ति उनके द्वारा श्रीमती काशीताई कालिटकर को लिखे गए एक पत्र में स्पष्ट रूप से हुई है, जिसमें उन्होंने अपनी उस असमर्थता को व्यक्त किया है जिसके कारण वे उनका अपने ही मकान में स्वागत नहीं कर पा रहे थे। उनकी बात पुनर्जन्म तथा अपनी शीघ्र मृत्यु की इच्छा तक पहुँच गई थी। उन्हें अब अनुभव हो रहा था कि निराशा तथा अवसाद की लम्बी अवधि के बावजूद अपनी पत्नी की भावनाओं की जो उपेक्षा उन्होंने की थी, अक्षम्य है। उन्हें पश्चात्ताप हुआ और स्थिति को सुधारने के लिए अपनी स्त्री की सुश्रूषा बड़े ही परिश्रम से करनी आरम्भ कर दी। १९०३ में उनके विवाहित जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। वेणु ने अपने घर को बड़े आनन्द से व्यवस्थित किया और आप्टे को उनके उन गुणों को देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ जिनकी वे अभी तक उपेक्षा करते रहे थे। उनका जीवन १९०३ के बाद प्रसन्न और सन्तुष्ट हो गया। उनकी पत्नी उनकी सभी आवश्यकताओं तथा रुचियों और अरुचियों का ध्यान रखा करती थी तथा उनकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए कठोर परिश्रम करती थीं।

परन्तु वेणु १९०५ में फिर बीमार हो गई। आप्टे गर्मियों में उन्हें लोनावाला ले गए जिससे वे स्वास्थ्य-लाभ कर सकें। उनकी एक पुत्री का जन्म १९०६ ई० में हुआ। परन्तु वेणु को फिर-से ज्वर आ गया जिसे डाक्टरों ने टायफाइड बताया। सौभाग्यवश लगभग चार सप्ताह बाद वे कुछ अच्छी हुई और अपने पैरों पर फिर से खड़ी हो गईं। छोटी बच्ची का नामकरण संस्कार अब किया गया और उसका नाम 'शान्ता' रखा गया। आप्टे-दम्पति अब छोटी बच्ची में पूर्णतः लीन हो गए। परिवार में खुशी फिर से लौट आई थी।

आप्टे की दैनिक-चर्या संतोषजनक रूप से स्थिर हो गई थी। वे रोज सुबह तीन बजे उठ जाते थे और अपने पुस्तकालय की मेज पर लिखने के लिए बैठ जाते थे। लगभग ढाई घण्टे लिख चुकने के बाद वे चाय पीते तथा अपनी पुत्री से कुछ देर खेलने के लिए नीचे आ जाते थे। शीघ्र ही उनके मित्र

आ जाते थे और एक-एक प्याली चाय पी लेने के बाद वे सब लोग टहलने के लिए पार्वती (पूना के पास के एक पहाड़ी पर स्थित एक मन्दिर जो उस समय नगर से लगभग डेढ़ मील दूर था) जाते थे। लौटते समय वे और उनके मित्र कुछ अन्य मित्रों से मिलते थे जिनके घर वे लोग नियमपूर्वक जाया करते थे। प्रातः की यह सैर लगभग साढ़े सात बजे समाप्त हो जाती थी। इसके पश्चात् आप्टे पत्र पढ़ते तथा दैनिक समाचार पत्र और पत्रिकाएँ देखा करते थे। इसके बाद वे आश्रम में रहने वाले संन्यासियों से मिलते, तथा छात्रावास भवन में रहने वाले विद्यार्थियों से भेंट करते। बाद में अन्य अतिथियों से मिलते थे। वे सुबह का भोजन आनन्दाश्रम में प्रचलित परम्परा के अनुसार आगन्तुक 'स्वामियों' की पूजा करने के पश्चात् लगभग साढ़े दस बजे करते थे। भोजन लगभग एक घण्टे में समाप्त हो जाता और इसके बाद आप्टे आनन्दाश्रम संस्था के प्रकाशन, मुद्रण, पत्र-व्यवहार तथा अन्य कार्यों को करते थे। नित्य शाम के पाँच साढ़े पाँच तक चलने वाले कार्य के बीच में यदि उन्हें जरा भी अवकाश मिलता तो वे पुस्तकें पढ़ते। लगभग तीन बजे दिन को उनका चाय का समय होता था।

शाम को पांच बजे उनके अन्य मित्र उनके यहाँ आते थे और चाय, ताश के खेल या सामयिक विषयों पर चर्चा होती। लगभग ८ बजे मित्र लोग चले जाते थे। जब अवसर होता तो आप्टे अपनी पत्नी और बच्ची के साथ घोड़ागाड़ी में बैठकर नगर की सैर के लिए जाते। रात्रि के भोजन के पश्चात् वे भजन गाते थे। (साधारणतः संत तुकाराम के 'अभंगों' का गायन)। उनका धार्मिक या पवित्र संस्कृत पुस्तकें पढ़ना उल्लेखनीय है। वे मराठी कृति 'दास बोध' (कवि रामदास कृत) बहुत ही रुचि के साथ पढ़ते थे। आमतौर पर वे जल्दी सो जाते थे। उनकी यह दिनचर्या अनेक वर्षों तक चलती रही।

आप्टे के मित्रों की मण्डली अत्यन्त व्यापक थी तथा उसमें समाज के सभी वर्गों के लोग थे जो न केवल महाराष्ट्र के थे बल्कि गुजरात और बंगाल के भी। वे अतिथियों का बड़ा सत्कार करते थे, जो उनकी पत्नी के

लिए एक भारी बोझ था। अतिथि नित्य ही आते थे और किसी भी समय। इसके अतिरिक्त आप्टे-परिवार भी बहुत बड़ा था और कुछ नाते-रिश्तेदार सदैव घर पर बने रहते थे। बम्बई काउन्सिल के वर्षाकालीन पूना-अधिवेशनों के समय काउन्सिल के अनेक सदस्य, जैसे श्री हरि सीताराम दीक्षित, कृष्णराव बावले तथा अन्य अधिकांश 'नरम' दल के लोग आकर आप्टे के साथ ठहरते थे। पूना में तिलकजी के घर की तरह आप्टे का घर नगर में राजनीतिज्ञों का दूसरा केन्द्र था।

घरेलू नौकरों तथा आनन्दाश्रम में उनके आधीन काम करने वाले कर्मचारियों से उनके सम्बन्ध अत्यन्त सौहार्दपूर्ण थे। श्रीराम सिंह 'आनन्दाश्रम' के एक अत्यन्त ही स्वामिभक्त तथा निष्ठावान कर्मचारी थे। आप्टे अपने कार्यकर्ताओं की आवश्यकताओं का सदैव ध्यान रखते थे। उनकी बीमारी में सभी प्रकार की चिकित्सा सम्बन्धी सहायता प्रदान करते। प्लेग की भीषण महामारी के समय उनके मानवतावादी कार्यों की सराहना समाज तथा शासन द्वारा समान रूप से की गई। अपने व्यक्तिगत जीवन को संकट में डालकर भी वे काम करने से विरत नहीं होते थे।

सभी प्रकार के साधु-संन्यासी आनन्दाश्रम में आया करते थे। आप्टे और उनकी धर्मपत्नी उनके स्वागत-सत्कार में कुछ नहीं उठा रखते थे। परन्तु उनमें सभी एक से नहीं थे, कभी-कभी ऐसे संन्यासी भी आ जाते थे जिन्होंने अन्धकार में भोजन करने का व्रत ले रखा हो या गृह-स्वामिनी को एक-एक कौर रखना होता था या ऐसे जो किसी शूद्र का मुँह देखना पसन्द नहीं करते थे। ये लोग वास्तव में आप्टे के लिए समस्याएँ उत्पन्न कर देते, जिन्हें वे बड़ी सौजन्यता से सुलझाते थे। कुछ बने हुए संन्यासी भी आ जाया करते थे। एक संन्यासी की कहानी बड़ी मनोरंजक है जिसने आप्टे के पिता को इतना प्रभावित कर लिया था कि वे समस्त सांसारिक वस्तुओं को छोड़कर उनके साथ चले जाने की बात करने लगे थे। उनका पाखंड तब खुला जब आप्टे के बहनोई उनके घर भोजन के लिए आये। स्वामी का आदेश था कि सभी लोग उनके भोजन करने के बाद खाएँगे। स्वामी स्वयं भोजन के

लिए काफी देर बाद आते थे तथा ध्यान करने के बहाने सभी से प्रतीक्षा करवाते थे। इस खास दिन जब स्वामी अनावश्यक रूप से विलम्ब कर रहे थे, आप्टे तथा उनकी पत्नी उन्हें बुलाने गए और दरवाज़ा खोलने से पूर्व उन्होंने अन्दर झाँक कर देखा कि 'महात्मा जी' क्या कर रहे हैं। उन्होंने देखा कि वह मिठाई खा रहे हैं। आप्टे ने पिताजी को बुला कर दिखाया कि स्वामीजी ध्यान के बहाने क्या कर रहे हैं। इस प्रकार धोखा पकड़ा गया। इस रहस्योद्घाटन के बाद स्वामी सबकी नज़र बचाकर चले गए तथा आप्टे के पिता अपने भोलेपन तथा वैराग्य से बच गए। आनन्दाश्रम में ऐसे भी अनेक साधु आते थे जो वास्तव में अपनी प्रतिज्ञाओं के प्रति सच्चे थे, जिन्होंने वास्तव में बहुत-सी वस्तुओं का परित्याग कर दिया था और जो अनेक शास्त्रों के पंडित थे। ऐसे साधुओं का स्वागत करने में, उनसे कुछ सीखने में तथा उनका सम्मान करने में, आप्टे को अत्यन्त हर्ष का अनुभव होता।

आप्टे ने भारत की दूर-दूर तक यात्रा की थी तथा अपने देश के समृद्ध इतिहास, वास्तुकला, धार्मिक संस्कृति, प्राकृतिक सुषमा तथा सम्पन्न साहित्य से प्रभावित हुए थे। उन्हें देश के भाग्य में बहुत अधिक विश्वास था तथा आनन्दाश्रम के सत्यनिष्ठ उत्तरदायित्वों के कारण हालांकि वे राजनीति को अपने वास्तविक पेशे के रूप में अपना नहीं सकते थे, फिर भी सभी वर्गों के उन नेताओं के भारी प्रशंसक थे, जिन्होंने इस महान् देश के उत्थान में योगदान दिया था। वे लोकमान्य तिलक के बहुत बड़े प्रशंसक थे।

आप्टे को बच्चे पसन्द थे। घर में छोटी लड़की के साथ जो समय गुज़ारते थे उसमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था। बच्चों को मनोरंजक कहानियाँ सुनाते थे, उनको प्रसन्न करते थे, तथा उनके साथ स्वयं भी बालक बन जाते थे। एक बार बच्चे एक पालतू बन्दर के साथ खेल रहे थे। अकस्मात एक छोटे-से लड़के की कमीज बन्दर ने फाड़ डाली। उस लड़के को बड़ा आनन्द आया। जब लड़का घर पहुँचा और उससे पूछा गया कि उसकी कमीज कैसे फटी तो उसने बताया कि यह घटना उसके एक मित्र के घर पर हुई,

जिसके साथ वह खेलने गया था। और पूछने पर यह जानकर लड़के के माता-पिता अचम्भे में पड़ गए कि यह मित्र और कोई नहीं, आनन्दाश्रम के प्रतिष्ठित विद्वान् तथा लोक-प्रिय लेखक—हरि नारायण आप्टे थे।

आप्टे ने कई जानवर पाल रखे थे—कुत्ते, एक हिरन, तोते, मैना तथा एक काकातुआ। यह अन्तिम पालतू चिड़िया उनके स्वर की नक़ल करती थी। नौकर लोग प्रायः उसे अपने स्वामी की पुकार समझकर भागे आते तो देखते कि चिड़िया उनके मालिक की आवाज़ की नकल कर रही है।

सन् १९०३ से सन् १९१३ के 'आनन्दाश्रम' की दस वर्ष की अवधि उनके लिए महान् हर्ष, सम्पन्नता तथा समारोह का समय था। १९१२ में मराठी-साहित्य सम्मेलन के अकोला अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए; बम्बई विश्व-विद्यालय के मराठी एम० ए० परीक्षा के परीक्षक नियुक्त किये गए तथा बाद में विल्सन भाषा-विज्ञान के प्रवक्ता के रूप में आमंत्रित किये गए।

३. सामाजिक और राजनैतिक कार्यकलाप

अधिकतर लोग आप्टे को एक प्रतिष्ठित लेखक के रूप में ही जानते हैं। परन्तु उनके सामाजिक और राजनैतिक कामों का भी उतना ही महत्व है। उन दिनों के महान् नेता लोकमान्य तिलक के तेज ने उनकी कांति को कुछ निष्प्रभ कर दिया था। आप्टे का जनता के प्रति प्रेम, विशाल मानवतावादी दृष्टिकोण, उनका आत्मत्याग, ये गुण उतने ही वड़े थे जितनी उनकी संवेदनशीलता और दूसरों की सहायता करने की उनकी प्रवृत्ति। वे सौभाग्यवश अपने समय के अनेक अन्य व्यक्तियों से अच्छी परिस्थितियों में थे, जिन्हें सामाजिक कार्य के लिए अपने पारिवारिक कर्तव्यों की उपेक्षा करनी पड़ती थी तथा परिणामस्वरूप गरीवी का सामना करना पड़ता था। महाराष्ट्र में समाज-सेवकों के सम्वन्ध में एक विचित्र भावना आज तक चली आ रही है जिसके अनुसार गरीवी और कष्ट में रहने वाले समाज-सेवकों को अधिक आदर की दृष्टि से देखा जाता है। निर्धनता और महानता का यह विचित्र समीकरण ही संभवतः वहुत शुभ नहीं था। सार्वजनिक कामों के लिए तो आप्टे अच्छी स्थिति में थे पर वैसे वे धनी नहीं थे। उनके व्यक्तिगत विचार चाहे जैसे भी रह हों वे अच्छे उद्देश्यों के लिए किये गए सभी कार्यों की सदैव सहायता करते थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आप्टे पूना के न्यू इंगलिश स्कूल के संस्थापक श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर का वहुत आदर करते थे। चिपलूणकर एक महान् सार्वजनिक कार्यकर्ता थे जिनकी शिक्षा तथा सार्वजनिक क्षेत्र में की गई उनकी सेवाओं के लिए महाराष्ट्र उनका वहुत ऋणी है। एक वहुत अच्छी नौकरी से त्यागपत्र देकर उन्होंने इस स्कूल की स्थापना की थी। वाद में यही स्कूल वढ़ कर फरगूसन कालेज वन गया। उन्होंने 'केसरी' (मराठी में) तथा 'मराठा' (अंग्रेजी में) की स्थापना जनता के मुखपत्रों के रूप में की थी; सस्ती तथा आदर्श पाठ्य-पुस्तकें प्रदान करनेके लिए तथा महान् भारतीयों के चित्रों

का लिथोग्राफ करने के लिए उन्होंने एक मुद्रणालय चलाया था। उन्होंने ऐतिहासिक शोध के कार्य में ऐतिहासिक गाथा-काव्य, पुस्तकों तथा अभिलेखों को प्रकाशित करने में पहल की थी। सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देकर उन्होंने गुलामी के 'रजतबन्धों' को सरकार को लौटा दिया। परन्तु सबसे महान् काम जो उन्होंने किया, वह था किसी की सहायता के बिना और स्वयं अपने द्वारा संपादित पत्रिका 'निबंधमाला' के प्रेरणादायक लेखों के माध्यम से जनता में इस आत्मविश्वास का प्रसार करना कि वह स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने का सामर्थ्य पहले भी रखती थी और अब भी रखती है। चिपलूणकर की मृत्यु १८८२ में हुई। आप्टे ने इसी समय उनके जन-शिक्षा के काम को चालू रखने का निश्चय किया। अतः उन्होंने अपने जैसे विचार-वाले मित्रों को एकत्र किया तथा उन्होंने एक साथ मिलकर एक दूसरा स्कूल १८८२ में आरम्भ किया, जिसका नाम नूतन मराठी विद्यालय रखा गया। १८८५ तक उस स्कूल का एक अंग्रेजी शिक्षा-संस्था के रूप में विकास हो गया। आप्टे ने स्कूल में एक अवैतनिक अध्यापक के रूप में लगभग ५ वर्षों तक काम किया। वे एक श्रेष्ठ अध्यापक थे और अपने विषय के विद्वान् थे। उन्हें अपने काम से एक विशेष लगाव था। इस स्कूल की अनेक प्रशासनिक तथा वित्तीय कठिनाइयों को वे पूना के सरकारी कर्मचारियों से अपनी घनिष्ठता के कारण सुलझा लिया करते थे। यह उन्हीं के प्रयास से सम्भव हो सका था कि बम्बई के गवर्नर लार्ड नार्थकोट ने नूतन मराठी विद्यालय के लिए सरकारी अनुदान देने की सिफारिश की। हाई स्कूल स्तर से बढ़कर इस स्कूल ने एक कालेज का दर्जा प्राप्त कर लिया और उसका नाम न्यू पूना कालेज पड़ गया। यह कालेज बम्बई विश्वविद्यालय का कालेज था। आप्टे अपने अन्तिम समय तक इस कालेज की प्रबन्ध समिति में रहे तथा इसे उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी-फ्रेंच तथा अन्य भाषाओं की पुस्तकों का अपना विशाल पुस्तकालय दान कर दिया।

आप्टे अपने प्रारम्भिक जीवन में ही भव्य वृद्ध सज्जन जस्टिस रानाडे के प्रभाव में आ गए थे और उनकी राजनीति में जो संयम आया उसके स्रोत

वही थे। उनके सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध एक और महान् समाज-सुधारक आगरकर के साथ भी थे, जिन्होंने 'केसरी' छोड़कर अपने पत्र 'सुधारक' की स्थापना की थी। गोखले भी उनके अंतरंग मित्रों में से एक थे। आप्टे ने सामाजिक और राजनतिक क्षेत्र में 'एज आफ़ कान्सेन्ट विल" के समय से प्रवेश किया था; जो कि भारत के समाज-सुधारकों का ऐसा प्रयास था, जिसके द्वारा वे लड़कियों के विवाह की आयु वढ़ाने को कानून वनाने के लिए ब्रिटिश सरकार पर जोर डालना चाहते थे। रूढ़िवादियों ने इसका विरोध किया। एक तूफानी सार्वजनिक सभा में आप्टे तथा उनके सहयोगियों ने रूढ़िवादी दल का विरोध किया जो यह मानते थे कि ब्रिटिश सरकार को विदेशी होने के नाते लड़कियों की शादी की आयु जैसी धार्मिक और सामाजिक प्रथा को वदलने का अधिकार नहीं है। कुछ दिन वाद, एक अन्य दिन सुधारकों ने एक दूसरी सभा की जिसमें उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा वनाए जानेवाले इस सुधारक कानून का समर्थन किया। इस सभा में रूढ़िवादियों ने पथराव किया तथा आप्टे और अन्य वहुत से नेताओं के चोटें लगीं। परन्तु इस घटना ने समाज-सुधारकों के संकल्प को और भी दृढ़ कर दिया और उन्होंने मित्र-मण्डल नामक एक क्लव की स्थापना की। इस क्लव में सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों के अनेक विषयों पर विवाद होता था तथा उनके सार्वजनिक कार्यकलाप की रूपरेखा निर्धारित होती थी। जस्टिस रानाडे तथा प्रोफेसर भंडारकर (संस्कृत के महान् विद्वान्) इस क्लव के सक्रिय शुभचिन्तक थे। वाद में वम्बई के जस्टिस तेलंग भी इसके सदस्य वन गए।

आगरकर ने एक वार आप्टे को अपने पत्र 'सुधारक' का सम्पादक वनाने का विचार किया था, परन्तु वाद में आप्टे के आनन्दाश्रम के भारी उत्तर-दायित्वों तथा अपनी पत्रिका 'करमणुक" में व्यस्त रहने के कारण उन्होंने श्री सीताराम पन्त देवधर को इस कार्य के लिए चुन लिया। सन् १९१२ में जव 'सुधारक' लगभग अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा था तव आप्टे ने कुछ महीने तक उसे चलाने में सहायता की।

सन् १८९५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गरम तथा नरम दलों में टक्कर हो गई। गरम दल वालों ने यह धमकी दी कि यदि पूर्व वर्षों की भांति इस वर्ष भी सामाजिक सम्मेलन उसी स्थान पर हुआ तो वे कांग्रेस का पंडाल जला देंगे।

इसी कांग्रेस अधिवेशन में आप्टे ने अपने द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित समाचार पत्र निकाला, जिसका नाम 'कांग्रेस समाचार' था। साथ ही उन्होंने अपने पूरे दिल से कांग्रेस अधिवेशन की सफलता के लिए कार्य किया।

लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में उग्र दल के कांग्रेसियों ने पूना की सार्वजनिक सभा पर अधिकार कर लिया तो जस्टिस रानाडे ने एक प्रतिद्वन्द्वी सामाजिक संस्था शुरू कर दी। आप्टे को इस संस्था का सहायक मंत्री नियुक्त किया गया, क्योंकि गोखले, लन्दन चले जाने के कारण, अनुपस्थित थे। इस कार्य से वे जस्टिस रानाडे के और भी घनिष्ट सम्पर्क में आ गए, जिन्होंने अब उन्हें महाराष्ट्र के १८९६ के अकाल में कृषकों की स्थिति पर आंकड़े एकत्र करने का कार्य सौंपा। इस पर आप्टे द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट की वहुत सहराना की गई।

जब गोखले लन्दन में थे तभी इस देश में, सन् १८९७ में, प्लेग की महामारी का आरम्भ हुआ। ब्रिटिश सरकार इस महामारी को नियंत्रण में लाने के लिए अलगाव, क्वारन्टीन तथा अन्य तरीकों का प्रयोग करना चाहती थी। पूना में यह कार्य सेना को सौंपा गया। ब्रिटिश सैनिकों ने अनेक अत्याचार किये और पूना में इस अनैतिकता, क्रूरता तथा साधनों के अनुचित प्रयोग के विरुद्ध क्रोध की एक भयंकर लहर फैल गई। आक्रोश वढ़ता गया तथा अनेक नेताओं ने अंग्रेज़ सैनिकों के उन अत्याचारों के सम्वन्ध में, जो उन्होंने अनेक असहाय और निरपराध भोली महिलाओं पर पूना में किये थे, सार्वजनिक वक्तव्य दिये। गोखले को इस सम्वन्ध में अनेक व्यक्तियों ने सूचना दी, जिनमें आप्टे भी थे। दक्षिण सभा की ओर से लन्दन में सेक्रेटरी आफ़ स्टेट फार इंडिया को पत्र भेजे गए, जिनमें वम्वई सरकार द्वारा किए गये खण्डन को गलत वताया गया था। तिलक ने भी अत्याचारों

की शहादतें इकट्ठी कीं जो वे गोखले को उनके लन्दन से लौटने पर देना चाहते थे। वे गोखले से मिलने के लिए वम्बई गये थे पर सरकार ने उन्हें वहाँ गिरफ्तार कर लिया। सरकार ने अपनी जान वचाने के लिए उन शहादतों को नष्ट कर दिया। रानाडे की सलाह पर गोखले ने व्रिटिश सरकार से अपनी ओर से गवाहियाँ प्रस्तुत न करने के कारण क्षमा-याचना कर ली। इस मामले पर उग्र-पन्थियों ने गोखले की वहुत ही तीव्र आलोचना की। उन्हें इस वात से वहुत वक्का पहुँचा। आप्टे ने अनुभव किया कि गोखले के इस मानभंग के एक प्रकार से वे ही कारण हैं और गोखले जव दो वर्ष वाद लौटे तो उन्होंने दक्षिण सभा का मंत्रिपद उन्हें फिर से वापस कर दिया।

आप्टे लिवरल यूनियन की कार्यवाहियों में भी भाग लिया करते थे, जहाँ पूना के कुछ प्रमुख नागरिक राजनैतिक मामलों पर रोज वाद-विवाद किया करते थे। जस्टिस रानाडे भी, जव भी पूना में रहते थे, इन लोगों का साथ देते थे। इन्हीं कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप गोखले ने १९०५ में सर्वेन्ट्स ऑफ़ इंडिया सोसायटी की स्थापना की। इस लिवरल यूनियन का स्वरूप मेसानिक लाज पर आधारित था। आप्टे ने 'करमणुक' के साथ ही साथ पूना में दैनिक 'ध्यानप्रकाश' का सम्पादन भी १८८८ से १८९४ तक किया। उस समय यह समाचार पत्र अंग्रेजी-मराठी में निकलता था। इसके अंग्रेजी भाग का सम्पादन आप्टे किया करते थे। सन् १८९४ में उन्होंने मद्रास कांग्रेस में भाग लिया और लंका भी गये। उन्होंने 'ध्यान-प्रकाश' कार्यालय की देखरेख १९०६ तक की जव कि इस पत्र को सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी ने ले लिया। और इतने वर्षों तक वे बिना किसी पारिश्रमिक के ही कार्य करते रहे।

पूना-प्लेग के विनाश और ध्वंस के वीच आप्टे की सामाजिक सेवा स्वार्थ-रहित और साहसिक सामाजिक सेवा का एक स्मरणीय उदाहरण है। यह महामारी भयंकर रूप से सांघातिक थी। मृतकों की संख्या वहुत ऊँची थी। यह पहले वम्वई में आई। और जव लोग वम्वई छोड़कर गुजरात

और महाराष्ट्र में जाने लगे तो वहां भी फैल गई। आप्टे ने मृतकों को हटाने के लिए अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कीं तथा इस कार्य में हाथ बँटाने के लिए चार अन्य कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त किया। वे पूना में लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में विशेष रूप से चालू किये गए प्लेग अस्पताल में बराबर काम करते रहे। संकट की इस घड़ी में उन्होंने अपने अनेक मित्रों की सुश्रूषा की। उन दिनों वे अपने घर पर कभी-कभी केवल शाम को जाया करते थे। आनन्दाश्रम भी संकटग्रस्त लोगों की सेवा समान रूप से कर रहा था। बहुत से परिवार अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को पूना छोड़ते समय वहीं रख जाते थे। उनके मित्र माधव राव जोशी इसी बीमारी से मरे। आप्टे उनकी सुश्रूषा करने के लिए लगातार उपस्थित रहे। बम्बई सरकार ने आप्टे को उनके मानवतावादी कार्यों के लिए 'कैसरे-हिन्द' पदक देकर सम्मानित किया। इस संकटकाल में आनन्दाश्रम बहुतों के लिए एक अनाथ-आश्रम बन गया। परन्तु ऐसा बहुत समय तक नहीं चल सकता था और इसीलिए आप्टे तथा उनके मित्रों ने इस महामारी से त्रस्त लोगों के लिए एक विशेष अनाथालय खोल दिया। आप्टे तथा एल० आर० गोखले अनेक वर्षों तक इस अनाथ-आश्रम के सहायक-मन्त्री रहे।

फरवरी १९०० में आप्टे का नामांकन सरकार ने पूना नगरपालिका में कर दिया। उस वर्ष से आप्टे ने कई विभिन्न पदों पर रह कर पूना नगरपालिका की सेवा की। परन्तु वह चुनावबाजी के तौर-तरीके सीख नहीं पाए और अपने नागरिक जीवन के अंतिम दौर में वे अध्यक्ष-पद के चुनाव में हार गए। परन्तु फिर भी उन्होंने नगरपालिका में बहुत उपयोगी ही कार्य किये। उन्होंने अनेक प्रतिष्ठित नामांकित सदस्यों, जैसे सर एम० विश्वेश्वरैया तथा जी० के० गोखले, के साथ काम किया। उन्होंने पूना की अक्षम तथा खराब नालियों की पद्धति को सुधारने में सहायता की। उन्होंने पूना म्युनिसिपल स्कूल बोर्ड की सेवा १३ वर्षों तक की (६ वर्ष अध्यक्ष के रूप में)। पूना में बच्चों की मृत्यु-दर पर एक रिपोर्ट तैयार करवाई, पुराने म्युनिसिपल म्यूज़ियम का पुनरुद्धार किया, किंग एडवर्ड मेमोरियल अस्पताल

खुलवाया, अलन्दी मन्दिर[1] की कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में कार्य किया, डफरिन फण्ड एकत्रित करने में सहायता की (जिससे भारतीय नर्सों को प्रशिक्षण के लिए सहायता मिलती थी), इन्फ्लुएन्ज़ा अस्पताल खोला तथा उसका कार्य-संचालन किया (१९१८ की भीषण महामारी के समय), और अनेक जन-कल्याण के कार्य किये जो इतने-अधिक हैं कि इस संक्षिप्त विवरण में सम्मिलित नहीं किये जा सकते हैं। वे एक महान् नागरिक नेता थे, एक वास्तविक मानवतावादी थे तथा उच्च साहस एवं साधुता से भरपूर कर्तव्यशील सार्वजनिक कार्यकर्ता थे।

पूना में १९१५ में, आप्टे ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का, जो उन दिनों नरमदल के अधिकार में थी, प्रादेशिक सम्मेलन करने का प्रस्ताव किया। वे स्वागत समिति के अध्यक्ष चुने गए। सूरत में १९०७ के आकस्मिक परिवर्तन के वाद भारतीय नरमदल का कोई भी प्रादेशिक सम्मेलन नहीं हुआ था। इस वीच गोखले की मृत्यु हो चुकी थी तथा दादाभाई नौरोजी एवं सर फिरोजशाह मेहता अपने खराव स्वास्थ्य के कारण वहुत सक्रिय भाग लेने में असमर्थ थे। इस सम्मेलन में श्री होर्मुसजी वाडिया तथा वम्वई के गवर्नर लार्ड विलिंगडन उपस्थित थे। महात्मा गांधी, सर नारायण चन्दावरकर, सर लल्लूभाई सामलदास,श्री समर्थ, श्री आर० पी० परांजपे, प्रोफेसर आर० जी० भण्डारकर आदि उन प्रतिष्ठित लोगों में थे, जो उसमें उपस्थित हुए थे। आप्टे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लगभग सभी अधिवेशनों में प्रतिनिधि या दर्शक के रूप में उपस्थित रहते थे। वे महिलाओं को इन अधिवेशनों में अधिक महत्वपूर्ण भाग लेने को सदैव प्रेरित किया करते थे। और स्वयं उन्होंने ही श्रीमती काशीताई कानिटकर जैसी महिलाओं को प्रतिनिधि वनवाया था। कांग्रेस के उस समय के स्वरूप में सभी राज-नैतिक कामों के पीछे उनकी वहुत ही सक्रिय भूमिका रहती थी। महाराष्ट्र

---

१. पूना के निकट प्रख्यात मन्दिर, जहां पर महाराष्ट्र के संत कवि ज्ञानेश्वर की समाधि है।

में कांग्रेस की विचारधारा के प्रचार तथा उन्हें कार्यान्वित करने में उनका वहुत अधिक योगदान था।

आप्टे भारतीय सामाजिक सम्मेलन (इंडियन सोशल कान्फ्रेंस) के भी वहुत प्रवल समर्थक थे और उन्होंने उसके लगभग सभी अधिवेशनों में भाग लिया था। परन्तु आनन्दाश्रम के विशाल कार्यों तथा उसकी विचारधारा की सीमाओं के कारण वे उस सम्मेलन के ध्येय और उद्देश्यों के लिए अधिक सक्रिय रूप से कार्य नहीं कर पाते थे। फिर भी उन्होंने अपने भाषणों तथा सामाजिक उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक सुधारों का प्रचार करने के लिए यथाशक्ति कार्य करने की चेष्टा की। इन मामलों में महाराष्ट्र उनके जैसे शांत एवं सक्रिय कार्यकर्ताओं के कारण वहुत आगे वढ़ गया था। आप्टे ने अनेक वर्षों तक पूना में भारतीय लड़कियों के हाई स्कूल की काउन्सिल, (जो अपने ऐतिहासिक सम्वन्धों के कारण जनता में 'हुजूर पागा' के नाम से प्रख्यात था) की सेवा की।

वे मराठी साहित्य सम्मेलन से भी वहुत ही घनिष्ठ रूप से सम्वद्ध थे तथा उसके सभी अधिवेशनों में उपस्थित रहते थे। वे सन् १९१२ में इस सम्मेलन के अकोला अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए थे।

यहाँ पर उनके नेशनल इंडियन एसोसिएशन, जो कि अन्तर-प्रादेशिक एकता के विकास के लिए वनाई गई थी, तथा अन्य वहुत-सी संस्थाओं में, जहाँ पर उन्होंने जन-सेवा की भावना से निर्वाध रूप से जो कार्य किया था, उसका विवरण देना अत्यन्त कठिन है। फिर भी उनका रायल एशियाटिक सोसायटी की वम्वई शाखा तथा वम्वई विश्वविद्यालय से सम्वन्ध का उल्लेख करना आवश्यक है। उनके पूना टेम्परेन्स एसोसिएशन में किए गए कार्यों का भी उल्लेख किया जाना चाहिए।

आप्टे स्वभाव से ही वहुत ही मिलनसार व्यक्ति थे तथा उनकी मित्र-मण्डली अत्यन्त व्यापक थी। अपने मित्रों के प्रति उनमें पूर्ण निष्ठा थी और वे उनके छोटे-से-छोटे गुणों की सराहना किया करते थे। उनके मित्र विभिन्न वर्ग के थे। कुछ उनके कॉलेज के साथी थे, अन्य ऐसे व्यक्ति थे,

जो एक दूसरे की व्यंगात्मक या काव्यात्मक रचनाओं को पढ़ने तथा सुनने के लिए एकत्रित हुआ करते थे और एक दूसरे की संगति में आनन्द पाते थे। इनकी गोष्ठी 'पापुलर क्लब' के नाम से जानी जाने लगी। आप्टे और समर्थ ने नई पुस्तकों को पढ़ने में कई रातें बिताई तथा क्लब में उन पर चर्चा की। कुछ मित्रों का उनका एक और वर्ग था जो रावसाहेब कानिटकर के घर पर विशुद्ध साहित्यिक चर्चा के लिए एकत्रित हुआ करते थे। कानिटकर, रानाडे (ज्ञानचक्षु के सम्पादक), ठाकुर और आप्टे इस मण्डली के सदस्य थे। मासिक पत्र 'मनोरंजन' का प्रारम्भ इसी मित्र-मण्डली के वादविवाद का परिणाम था। मित्रों की एक तृतीय मण्डली उन लोगों की थी, जो मराठी के महान् विद्वान्, विष्णुशास्त्री चिपलूणकर के स्मृति-दिवस के लिए एकत्रित हुए थे।

आनन्दाश्रम में आप्टे का घर उनके मित्रों के लिए एक महान् आकर्षण था। यह नगर के बीच में था और इस कारण वहाँ पहुँचना आसान था। यहाँ सभी मित्र रोज कम-से-कम एक बार इस केन्द्रीय स्थान में एकत्रित होते, जहाँ गम्भीर साहित्यिक चर्चा हुआ करती। मई मास में आप्टे के मित्र कानिटकर-दम्पति भी सुखद बौद्धिक अनुभूति के इस गुप्त स्थान पर सम्मिलित होने लगे। जो लोग यहाँ एकत्रित होते वे सामान्य राजनैतिक तथा सामाजिक आदर्शों में विश्वास रखते थे।

आप्टे अतिथि-सत्कार में अत्यन्त उदार थे। परन्तु ये मित्र मिलने तथा सामान्य रुचि की बातों पर विचार-विनिमय के लिए भी एक दूसरे के घर जाया करते थे। माधवराव जोशी का घर भी इसी प्रकार का एक गोष्ठी-स्थल था, जहाँ ये सभी मित्र पार्वती मन्दिर से प्रातःकालीन भ्रमण करके लौटते समय चाय पीने के लिए एकत्रित होते थे। उन दिनों दूकानों से खरीदी हुई डबल रोटी तथा बिस्कुटों का खाना वृद्ध-जनों और रूढ़िवादी लोगों द्वारा बहुत बुरा समझा जाता था, परन्तु यहाँ जोशी-जी के मकान पर ये सभी मित्र साधारणतः चाय के साथ इन्हीं निषिद्ध डबल रोटियों और बिस्कुटों का सेवन किया करते थे। पूना

कैम्प में एक दूकान थी जो उनको डवल रोटी और बिस्कुट पहुँचाया करती थी।

एक दिन जब प्रोफेसर पान्से चाय के समय अनुपस्थित थे तभी एक दिलचस्प घटना घटी। आप्टे ने उन्हें एक गुप्त संदेश भिजवाया, जिसमें यह लिखा ''सुड्न्या दीक्षितों' के मठ से 'स्वामीजी' माधव राव के घर पर आए हैं। वाटू (एक नए धार्मिक सन्त) भी आए हैं। दल के अन्य लोग उपस्थित हैं। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप आकर 'स्वामी' से मिलें तथा पवित्र जल ग्रहण करें।' ('स्वामी' तथा 'वाटू' डवल रोटी और बिस्कुट के गुप्त नाम थे)। पान्से के घर में यह पत्र उनके वृद्ध पिता के हाथ में पड़ा, जो इस बात से प्रसन्न हुए कि एक 'स्वामी' आए हैं और उन्हें उनके पवित्र 'दर्शन' हो सकते हैं। उन्होंने स्नान किया और तैयार हो गए तथा अपने लड़के के घर आने पर उन्होंने बताया कि उनके जैसे ग्रामीण व्यक्तियों के लिए एक महान् स्वामी के दर्शन पाने का सौभाग्य पाना दुर्लभ है। प्रोफेसर पान्से दुविधा में पड़ गए, परन्तु चतुराई से उन्होंने अपने पिता से कहा कि पहले वे जाएँगे और अपने पिता के लिए कोई समय निश्चित कर आएँगे। पान्से ने अपने मित्रों को बताया कि किस प्रकार से इस गुप्त संदेश को उनके धार्मिक विचारों के पिता ने भोलेपन से सच माना था। सभी लोग देर तक हँसते रहे। पान्से ने घर लौट कर अपने पिता को बतलाया कि 'स्वामी' का आगमन बहुत थोड़े समय के लिए हुआ था तथा वे पहले ही लौट गए थे। उन्हें इस सौभाग्य की प्रतीक्षा करनी होगी। वृद्ध श्रद्धालु सज्जन इस बात से बहुत दुखी हुए कि उनका इतना भाग्य नहीं था कि उन स्वामीजी के दर्शन कर सकते।

यह घटना इस बात पर प्रकाश डालती है कि किस प्रकार से धार्मिक निषेध इतने प्रतिष्ठित नागरिकों के बीच भी काम करते थे। गोखले आप्टे के एक महान् परन्तु कनिष्ठ मित्र थे। वे दो वर्ष छोटे थे। दोनों एक-दूसरे के सम्पर्क में सम्भवतः इसलिए आए, क्योंकि दोनों ही जस्टिस रानाडे के प्रशंसक और सहायक थे। गोखले स्वयं आनन्दाश्रम में नियमपूर्वक आया करते थे,

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि वे अन्य मित्रों के घर भी जाया करते थे। उनका सामान्य राजनैतिक दृष्टिकोण ही उनको एक साथ बांधे हुए था। आप्टे ने वस्तुतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नरम विचार-धारा को राजनीति में स्वीकार कर लिया था। गोखले इसीलिए उनके प्रति अत्यन्त मित्रता का भाव रखते थे और इन लोगों के घनिष्ठ वार्तालाप का एक प्रामाणिक विवरण प्राप्त है। गोखले के बारे में यह जाना गया है कि उन्होंने कहा था कि वे अपने देश की सेवा मंत्रि-मंडल के एक सदस्य के रूप में करना चाहेंगे जब कि आप्टे ने एक प्रख्यात उपन्यासकार बनने के अपने इरादे की घोषणा की।

गोखले आप्टे से केवल नरम विचारधारा की राजनीति के विषय में बातें ही नहीं करते थे, बल्कि शेक्सपीरियन आलोचना की समस्याओं पर भी वाद-विवाद किया करते थे। आप्टे ने अंग्रेजी, फ्रेंच तथा संस्कृत साहित्य का व्यापक अध्ययन किया था तथा इन वाद-विवादों में उनका योग मौलिक और मूल्यवान होता था। गोखले की इच्छा थी कि पूना फरगूसन कालेज को स्वयं आप्टे की सेवाएँ फ्रेंच के प्रोफेसर के रूप में प्राप्त करनी चाहिए; परन्तु कुछ औपचारिक कठिनाइयों के कारण सम्भवतः यह अत्यन्त उपयोगी विचार कार्यरूप में परिणत नहीं हो सका। गोखले की यह इच्छा भी बड़ी बलवती थी कि वे आप्टे को बम्बई लेजिसलेटिव काउन्सिल के लिए निर्वाचित करवा दें। सन् १९०९ में आप्टे चुनाव लड़ने के लिए तैयार हुए। तिलक की विचारधारा के अनुयायी एन० सी० केलकर को, जो आप्टे का विरोध कर रहे थे, बम्बई की सरकार ने इस तर्क पर अयोग्य घोषित कर दिया कि वे अपराध (राजनैतिक) करने पर दण्ड भुगत चुके हैं। आप्टे को जान-बूझ कर किये गए इस वैधानिक अन्याय से अत्यन्त दुःख पहुँचा। आप्टे के विरोधी कुछ सरफिरों ने उन पर यहाँ तक आरोप लगाया कि उन्होंने स्वयं ऐसा करवाया है, परन्तु वे उनके देशभक्तिपूर्ण एवं उदार मन को नहीं जानते थे।

पाठकों के लिए इस बात की जानकारी दिलचस्प होगी कि आप्टे ने

अपने उपन्यास 'मी' में भावानन्द की जिस संस्था का चित्र खींचा था, उसी ने वाद में वास्तविक स्वरूप पाया गोखले द्वारा सन् १९०५ में संस्थापित सर्वेन्ट्स आफ़ इण्डिया सोसायटी के रूप में। गोखले जब मृत्यु-शैय्या पर थे, तो उनके पास आने वालों में आप्टे अन्तिम व्यक्ति थे। १९ फरवरी, १९१४ को गोखले ने उन्हें विशेष रूप से वुलवाया था। अन्तिम शब्द उन्हीं से कहे गए थे। इससे पता चलता है कि दोनों के आपसी सम्बन्ध कितने घनिष्ठ थे।

मित्रता की एक दूसरी दिलचस्प घटना भी उल्लेखनीय है, जो चित्र-शाला प्रेस, पूना के श्री वसु काका जोशी से सम्बन्धित है। जोशी तिलक के कट्टर अनुयायी थे, जब कि आप्टे नरमदल में थे। इस पर भी आप्टे ने अपनी नि:स्वार्थ और वास्तविक मित्रता को ध्यान में रखते हुए अपने प्रख्यात ऐतिहासिक उपन्यास 'सूर्योदय' का समर्पण जोशी को ही किया।

उनके एक और मित्र नागपुर के श्री हरिमोहन पण्डित थे। पण्डित 'देश सेवक' के सम्पादक थे। वे बड़े ही प्रतिभाशाली लेखक तथा समाज-सुधारक थे। आप्टे ने अपना उपन्यास 'मी' अपनी मित्रता के प्रतीक के रूप में श्री पण्डित को समर्पित किया। समाज-सुधार के समर्थकों में उनके वहुत सारे मित्र थे। प्रमुख एडवोकेट, जैसे सर मोरोपन्त वी० जोशी तथा रावबहादुर रंगराव मुधोलकर (नागपुर के) तथा अनेक राजनैतिक कार्यकर्ता आप्टे के मित्र थे। कांग्रेसी नेता एच० एस० दीक्षित, जो गुजरात से आए थे तथा बम्बई विधान सभा के सदस्य थे और जो लिवरल नेताओं के बड़े प्रशंसक थे, आप्टे से बम्बई और पूना में मिला करते थे। वे राजनीति और समाज-सुधार पर विचार-विमर्श किया करते थे। राव-बहादुर विष्णु मोरेश्वर महाजनी, जो एक शिक्षा शास्त्री तथा एक प्रख्यात लेखक थे, आप्टे के बहुत बड़े प्रशंसक थे। सबसे पहले उन्होंने ही आप्टे की साहित्यिक प्रतिभा को पहचाना था। उन्होंने आप्टे की कृतियों की प्रशंसा करना और उन्हें उपयोगी सुझाव देना अपना सदैव का नियम बना रखा

था। उनके प्रशंसक मित्रों की संख्या वहुत वड़ी थी। वे अक्सर उनसे मिलते-जुलते रहते थे। आप्टे की लोक सेवा के फलस्वरूप भी उन्हें कुछ वड़े अच्छे मित्र मिले। रावसाहेव वी० ए० पटवर्धन और आप्टे ने पूना में १८९७ के प्लेग के समय एक साथ स्वयंसेवकों के रूप में कार्य किया था। वे पूना नगरपालिका में भी साथ ही आए, डफरिन फण्ड आर्गनाइजेशन में सहायक मंत्रियों के रूप में भी उन्होंने साथ काम किया। पटवर्धन आनन्दाश्रम के ट्रस्टी भी अनेक वर्षों तक रहे। आप्टे ने जव हीरावाग अनाथ आश्रम तथा पूना नगरपालिका में कार्य किया तो एल० आर० गोखले से भी उनकी आत्मीयता हो गई। आप्टे के कार्य से पूना नगर-पालिका में भी उनके अनेक मित्र वने, जैसे राववहादुर रामनारायण अमरचन्द, हनमंथ राम, रामनाथ तथा सेठ मादीवाले। ये सभी उन लोगों में थे जो आनन्दाश्रम नियमपूर्वक जाया करते थे।

आप्टे के निकट परिचितों में एक और वर्ग था सरकारी अधिकारियों का। पहले यह लोग राववहादुर वाड के घर एकत्र होते थे, परन्तु १८९८ की महामारी में उनकी मृत्यु के वाद वे आनन्दाश्रम की ओर मुड़ गए।

महाराष्ट्र की कुछ जागीरों तथा छोटे राज्यों के प्रधानों में आप्टे श्रीमन्त वालासाहेव पन्त प्रतिनिधि (उस समय के सतारा जिले में अनुव राज्य) तथा श्रीमन्त वावा साहेव घोरपड़े (इछालकरनजी, कोल्हापुर जिला) के वहुत ही निकट थे। श्रीमंत वालासाहेव के रेखाचित्रों ने 'महाभारत' के आलोचना अंक की शोभा वढ़ाई। वे आप्टे से कला और साहित्य के अनेक प्रश्नों पर चर्चा किया करते थे। 'रामायण' तथा 'महाभारत' से सम्वन्वित चित्रों में वेशभूषाओं के विषय में परामर्श आप्टे ने दिया था। पूना के प्रकाशक के लिए इन दोनों महाकाव्यों पर वे एक आलोचनात्मक व्याख्या लिखने वाले थे। वस्त्र-विन्यास और केश-विन्यास, आभूषण, सिर के पहनावे, अस्त्र-शस्त्र आदि पर, जो इन चित्रों में दिखाए गए हैं, आप्टे के इन दोनों महाकाव्यों के प्रगाढ़ ज्ञान की छाप पड़ी हुई है। दूसरे प्रधान, वावासाहेव घोरपड़े, समस्त अच्छे साहित्य के महान् प्रशंसक थे।

एक बार उन्होंने हँसी में यह टीका की थी कि महाराष्ट्र में प्राचीन पद्धतियों के ख़त्म हो जाने का मुख्य कारण सामाजिक और राजनैतिक तत्व नहीं वल्कि आप्टे का उपन्यास है।

आप्टे कानिटकर-दम्पति, रावसाहेब गोविन्दराव तथा उनकी धर्मपत्नी, काशीताई के बहुत घनिष्ठ मित्र थे। हम यह पहले ही देख चुके हैं कि श्रीमती कानिटकर को लेखन में किस प्रकार से आप्टे ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। आप्टे ने उनको इतना अधिक आदर दिया जितना कोई अपनी सगी बहन को देता है। उन दिनों स्त्रियों के लिए शिक्षा प्राप्त करना बड़ा ही कठिन कार्य था और उसके लिए दूसरों से प्रोत्साहन पाना तो बहुत बड़ी बात थी। परन्तु आप्टे की तीव्र इच्छा थी कि स्त्रियाँ शिक्षित हों तथा देश की प्रगति में अपनी पूरी भूमिका निवाहें। इसीलिए वे उन सभी स्त्रियों की सदैव मदद करते थे तथा प्रोत्साहन देने के लिए तैयार रहते थे जो शिक्षा पाना और कुछ कर दिखाना चाहती थीं। उनकी इसी सहानुभूति का यह परिणाम था कि रावसाहेब कानिटकर तथा उनकी पत्नी श्रीमती कानिटकर से उनकी इतनी मित्रता बढ़ी। एक बार ऐसा हुआ कि काशीताई कानिटकर आप्टे से मिलने आई, परन्तु आप्टे गोखले के साथ किसी चर्चा में व्यस्त थे। काशीताई ने बिना आप्टे से मिले लौट जाने का फैसला किया। जब उन्हें बताया गया कि उनसे मिलने के लिए काशीताई प्रतीक्षा कर रही हैं तो आप्टे स्वयं नीचे आए, काशीताई से मिले तथा उनसे क्षमा माँगी। बाद में उन्होंने नौकरों को आदेश दिया कि वे चाहे जिस समय आएँ और उस समय वह खुद चाहे जिस कार्य में व्यस्त हों, काशीताई को घर में सादर बिठाया जाए। आप्टे अपने मित्र माधवराव की पत्नी पार्वतीबाई जोशी के कल्याण के लिए भी समान रूप से उत्कंठित रहा करते थे। वे उनको सदैव सगी बहन की तरह समझते थे तथा आदर करते थे। माधवराव की मृत्यु के उपरान्त उनकी तथा उनके बच्चों का सदैव ध्यान रखते थे।

आप्टे ने अपनी मित्रता में कभी भी रुपए-पैसे या सामाजिक स्थिति का विचार नहीं किया। गोगाटे, जो एक अध्यापक थे, आप्टे के मित्र थे और

उनका व्यवहार उनसे भी उतना ही घनिष्ठ था जितना अन्य विशिष्ठ मित्रों के प्रति। रंगोपन्त अत्रे (उनके एक कॉलेज सहपाठी के छोटे भाई) ने अपनी मृत्युशैया पर आप्टे से अनुरोध किया था कि वे उनके भाई को अपना भाई समझें। उसमें वे अब भी उतनी दिलचस्पी लेते थे और उसे वैसा ही स्नेह देते थे जैसा उनके दिवंगत बड़े भाई।

पूना के अंग्रेजों में भी आप्टे के कुछ अच्छे मित्र थे: सर क्लाड हिल, मि० माउन्टफोर्ड, राबर्टसन, जेम्स ड्यूबोल, मि० स्विफ्ट, फादर रिविंगटन, मि० किटिंग तथा श्री किन्केड। किन्केड से आप्टे की खास घनिष्टता थी। आप्टे एक बार एक सप्ताह तक किन्केड के अतिथि रहे। उस दौरान वे दोनों मराठा इतिहास एवं पारस्परिक रुचि के अन्य विषयों पर खूब चर्चा करते थे। बम्बई के गवर्नर लार्ड विलिंगडन भी आप्टे के सम्बन्ध में बहुत उच्च विचार रखते थे। आप्टे अपने अंग्रेजी मित्रों के द्वारा जनता के बहुत से काम करवा लिया करते थे, बहुत-सी कठिनाइयों को आसान करवा देते थे तथा अनेक चिन्ताओं को दूर करवा लिया करते थे।

उन्हें बच्चों से बहुत प्यार था। इन नन्हें मित्रों की बातों में उनको बड़ा आनन्द आता था। वे उनके लिए कविताएँ लिखा करते थे। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने एक बच्चे को अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। वह लड़का घर गया तथा उसने अपने माता-पिता से बताया कि अगले दिन उसे उसके एक मित्र 'हरि' ने अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया है। जब माता-पिता ने पूछा कि यह 'हरि' कौन है तो उन्हें यह जानकर अचम्भा हुआ कि उनके लड़के के घनिष्ठ मित्र प्रख्यात साहित्यिक विभूति आप्टे थे। वे बच्चों का विश्वास इस तरह पा लेते थे कि आयु में चालीस वर्ष का अंतर होने के बावजूद बच्चे उनकी संगति में खुश रहा करते थे।

४. सुधारक के रूप में

महाराष्ट्र में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम कुछ दशकों से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों तक का युग बड़े सामाजिक और राजनैतिक उथल-पुथल का युग था। हिन्दू समाज नवीन सामाजिक और राजनैतिक विचारों के ऐसे भँवर में पड़ गया था, जो इससे पहले बिल्कुल अज्ञात था।

अपनी प्रथाओं तथा जाति-पाँति के भेद के कारण हिन्दुओं को ईसाई मिशनरियों द्वारा की गई भयंकर आलोचना का सामना करना पड़ रहा था। सरकारी यंत्र ने ऐसे कानून पास किए, जो उपयोगितावादी दृष्टि से समाज की युगों पुरानी नींव को उखाड़ने में सहायता कर रहे थे। (उदाहरणार्थ जायदाद के उत्तराधिकार से संबंधित कानून)। पश्चिमी भारत में उच्च उद्देश्यों द्वारा विचारों में उग्र क्रान्ति लाने वाले हिन्दू नेताओं के बुद्धिवादी वर्ग में जस्टिस रानाडे, जस्टिस तेलंग, प्रख्यात संस्कृत विद्वान् आर० जी० भण्डारकर, प्रिंसिपल आगरकर, स्वामी दयानन्द तथा ज्योतिबा फुले थे। जाति-भेद, छुआछूत, स्त्रियों में निरक्षरता, समाज में उनकी निम्नस्थिति आदि हिन्दुओं के सिद्धान्तों और व्यवहार में जो गहरा विरोधाभास प्रगट करता है, समाज को उसका बोध कराने के लिए इन लोगों ने अथक प्रयास किया। समाज के तथाकथित उच्च वर्गों में व्याप्त मद्यपान की नई बुराई और प्राचीन वेश्यावृत्ति की भी कठोर आलोचना की गई। आप्टे, जो एक कट्टर देशभक्त तथा एक उत्साही समाज सुधारक थे, अपने जीवन के प्रारंभिक काल में ही जस्टिस रानाडे के सम्पर्क में आ चुके थे। साथ ही वे सुधारकों और नवीन राजनैतिक विचारों वाले इन नेताओं की श्रेणी में आ गए थे। उन्होंने अपने उपन्यासों के द्वारा चारों ओर व्याप्त समाज की अनेक बुराइयों तथा समस्याओं का विश्लेषण करते हुए प्रचार का काम शुरू किया। इन समस्याओं का समाधान खोजने की भी उन्होंने चेष्टा की।

संयुक्त परिवार पद्धति की बुराइयों, स्त्रियों की उपेक्षा तथा उनके लिए शिक्षा की आवश्यकता, बालविवाह जैसी सामाजिक समस्याओं, असमान विवाह, विलम्ब से किए गए विवाह, विधवाओं का पुनर्विवाह, विधवाओं का सिर मुँडाना तथा पतित स्त्रियों के पुनर्वास पर विचार उनके उपन्यासों में मिलते हैं। आप्टे ने आगरकर की भाँति अपने हाथ में चाबक लेकर समाज को मारना नहीं शुरू किया, बल्कि अपने पात्रों के माध्यम से समाज को 'एक प्रेमशीला पत्नी की भाँति' सलाह दी। यह अब स्वीकार कर लिया गया है, कि सामाजिक सुधारों पर उनका अपने पाठकों पर प्रभाव प्रख्यात निबन्धकार लोकहितवादी (गोपालराव हरि देशमुख) की कठोर सामाजिक आलोचना अथवा आगरकर की तीखी लेखनी द्वारा प्राप्त किए प्रभावों से अधिक था।

उदाहरण के लिए उनके उपन्यास 'गणपतराव' में विवाहित जीवन के सुखों, बालविवाह की बुराइयों, विधवाओं के पुनर्विवाह, स्त्री-शिक्षा, जाति-प्रथा तथा अन्ध-विश्वास की बुराइयों पर विचार किया गया है। उनका दूसरा उपन्यास—"पण लक्षात कोण घेतो" (परन्तु किसे परवाह है?) में पारिवारिक सम्बन्धों, स्त्रियों की उस समय की स्थिति, संयुक्त परिवार, धर्म सम्बन्धी मिथ्या धारणाएँ और नैतिक पाखंड का चित्रण है। उनके उपन्यासों 'भयंकर दिव्या' तथा 'कर्मयोग' में हम दो ऐसी विवाहित विधवाओं के चित्र देखते हैं, जो अच्छी माताएँ तथा पत्नियाँ बन सकीं (विधवा जीवन में अनाचार की उस समय की प्रचलित धारणा के विरुद्ध)। आप्टे का यह मत था कि यदि विधवाओं के लिए पुनर्विवाह की अनुमति नहीं दी जाती है तो विधुर लोगों को भी निश्चित रूप से पुनः विवाह करने की छूट नहीं होनी चाहिए। यह स्थिति वास्तव में तर्कसंगत थी। परन्तु अधिकांशतः यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि विवाह ज्यादातर एक अत्यन्त व्यक्तिगत विषय है तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों पर कोई भी नियम या कानून नहीं हो सकते। उनका अपना दूसरा विवाह या जस्टिस रानाडे का द्वितीय विवाह इस बात का प्रमाण है। आप्टे किसी विधवा

से विवाह नहीं कर पाए, क्योंकि ऐसा करने से उन्हें केवल अपने परिवार के सभी सदस्यों से ही सम्बन्ध-विच्छेद न करना होता (जो निश्चित रूप से रूढ़िवादी थे) बल्कि उन्हें 'आनन्दाश्रम' भी छोड़ना पड़ता, जिससे यह पता चलता है कि किस प्रकार एक साधारण तथा प्रत्यक्ष रूप से औचित्यपूर्ण तर्क जीवन का वहाँ संचालन नहीं कर सकता है, जहाँ किसी के गहरे व्यक्तिगत और भावात्मक सम्बन्धों का सवाल होता है। विवाह की आयु सम्बन्धी विधेयक (एज आफ़ कान्सेन्ट बिल) पर उस समय व्यापक तथा उत्तेजनात्मक चर्चा हो रही थी। आप्टे इस विधेयक के पूर्ण समर्थक थे, जिसके द्वारा लड़कियों के विवाह की कानूनी आयु को आठ वर्ष से बढ़ाकर चौदह या सोलह वर्ष तक कर देने का प्रस्ताव था। आप्टे के चाचा के विरोध के बावजूद गोखले तथा आप्टे ने मित्र-मंडल के सभी सदस्यों से एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिए थे कि वे अपनी पुत्रियों का विवाह सोलह वर्ष की अवस्था से पहले नहीं करेंगे। आयु को बढ़ाने की सुधारकों द्वारा पेश की गई दलील राजनैतिक स्तर पर थी, जब कि जनता एक विदेशी सरकार को उतने अधिकारों के अतिरिक्त, जो उसने इस देश पर अपना अधिकार करके प्राप्त कर लिए थे, और कोई भी सामाजिक अथवा धार्मिक अधिकार देने के लिए तैयार नहीं थी। सुधारकों की इच्छा थी कि सरकार स्वयं एक ऐसा कानून बनाए। आगरकर जैसे सुधारक ने भी नवम्बर, १८९० में भेजी गई लिखित उस याचिका पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया था; जिसके लोकमान्य तिलक प्रथम हस्ताक्षरकर्ता थे तथा आप्टे और अन्य लोगों को मिलाकर पूना के चालीस प्रमुख नागरिकों ने जिस पर हस्ताक्षर किए थे। यह बात दिलचस्प है कि लिखित याचिका पर अधिकांश रूढ़िवादियों तथा सुधारकों ने समान रूप से हस्ताक्षर किए थे। आप्टे विचार और व्यवहार में एक महान् सामाजिक सुधारक थे। अपने सार्वजनिक जीवन के पूरे पैंतालीस वर्षों में उन्होंने सभी सामाजिक सुधार के प्रस्तावों का प्रवर्तन किया। 'आनन्दाश्रम' में उनके कार्य का अर्थ था आचार-व्यवहार की कुछ परम्परागत पद्धतियों का पालन। कारण यह था कि

आश्रम एक धार्मिक न्यास (ट्रस्ट) था। इसीलिए वे शुद्ध मन से उपासना करते थे। त्यौहारों-पर्वों को मनाते थे, घरेलू धार्मिक-कृत्यों का पालन करते थे, हर सोमवार को भगवान् शिव की उपासना में नियमपूर्वक उपवास करते थे, शिवरात्रि तथा अन्य छोटे-मोटे संस्कारों और अनुष्ठानों को मानते थे। इससे वे सभी के प्रिय बन गए थे। इसके यह अर्थ नहीं हैं कि धार्मिक प्रचलनों के सम्बन्ध में उनका कोई व्यक्तिगत विश्वास अथवा अभिमत नहीं था। वे तो केवल अपने दिवंगत चाचा तथा माता-पिता आदि के उन सत्यनिष्ठ विचारों के प्रति आदर व्यक्त करते थे और उनको क्रियात्मक रूप देते थे, जिन्हें वे मनुष्य के आध्यात्मिक कल्याण के लिए हितकर समझते थे। अपने सुधारवादी आदर्शों के बावजूद वे अपने चाचा को, जिन्होंने आश्रम की स्थापना की थी, दिए गए पवित्र वचनों को नहीं तोड़ सके। उनके उपन्यासों 'कर्मयोग', 'आजच' (आज) आदि उनके मन की वास्तविक स्थिति को दर्शाते हैं। वे सपनों में, पुनर्जन्म में तथा दैवी प्रेरणा में विश्वास करते थे। उनके उपन्यासों में इन सभी साधनों का प्रयोग उसी प्रकार से हुआ है, जिस प्रकार कोलरिज ने अंग्रेजी साहित्य में किया है। वे बड़े ही धर्मपरायण थे तथा अपनी पुत्री के लिए सभी व्रतों का पालन करते थे, जिससे कि वह कुशल से रहे। पूजा के समय वे रेशमी वस्त्रों को उनकी स्वच्छता और पवित्रता के कारण धारण करते थे न कि उपचार के लिए। किसी को भी अपने परिवार के सदस्यों अथवा सामान्य रूप से आम लोगों के प्रति अप्रिय नहीं होना चाहिए।

थियोसोफिस्ट लोगों, प्रार्थना समाज के अनुयायियों, वरकारियों, जनता को छलने वाले अनेक पाखण्डी गुरुओं तथा उनके चेलों के विचित्र कर्मकाण्ड तथा मतों की वे आलोचना किया करते थे। रामदास के 'दासबोध' (मराठी में), तुकाराम के भक्ति गीत (जो अभंग कहलाते हैं), ज्ञानेश्वरी (भगवद् गीता पर ज्ञानेश्वर रचित मराठी व्याख्या), मूल भगवद् गीता, उपनिषद् और वेदान्त के पाठ उन्हें प्रिय थे। वे ईसाई धर्म और बाइबिल की आलोचना उनकी रूढ़ियों के कारण करते थे; परन्तु साथ ही उनके

प्रगाढ़ मानवतावाद के लिए उनका आदर करते थे। चन्द्रशेखर का चरित्र (कर्मयोग में) सम्भवतः उनके निजी धार्मिक विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। उनके उपन्यासों में कभी-कभी विक्टोरियाकालीन धार्मिक संशयवाद की वैसी ही मनःस्थिति पाई जाती है, जिस प्रकार हम टेनिसन या अन्य विक्टोरियाकालीन कवियों तथा उपन्यासकारों में पाते हैं। उनके अपने विचारों की अभिव्यक्ति चन्द्रशेखर द्वारा सम्भवतः की गई है जो कि अपने विश्वास की अभिव्यक्ति एक ऐसे सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ ईश्वर के प्रति करता है, जो आनन्द का सार है और जो इस ब्रह्माण्ड को नियंत्रित करता है। अपने समय के सब शिक्षित व्यक्तियों की भाँति आप्टे सम्भवतः ईश्वर तक पहुँचने के निश्चित साधनों के बारे में निर्णय नहीं ले पाए थे। राजनैतिक और सामाजिक सुधारों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध और प्राथमिकता के सम्बन्ध में उनके विचारों का संकेत उनके चरित्र शिवराम पन्त के उद्गारों में मिलता है, जब कि वह कहता है कि दोनों में कोई विरोध या स्पर्धा नहीं है तथा देश के हित में दोनों को समान प्राथमिकता मिलनी चाहिए। भावानन्द का 'मठ' ('मी' में) आप्टे के भारत के कल्याण की धारणा की ओर इंगित करता है। यहाँ के 'आनन्द' स्कूल में देश के कल्याण पर जो बल दिया गया है इसका सार इस सिद्धान्त में मिलता है, 'मेरे देश का कल्याण मेरा धर्म है तथा मेरे देश की स्वतंत्रता मेरा मोक्ष है।' वह धारणा सर्वेन्ट्स ऑफ इन्डिया सोसायटी, जिसकी स्थापना बाद में गोखले द्वारा की गई, के आदर्शों से बहुत मिलती-जुलती है। भारत में ब्रिटिश राजनीति के सम्बन्ध में आप्टे के विचार बहुत स्पष्ट हैं, जिनका अभिव्यक्तिकरण 'आजच' (आज) के अंग्रेज पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा पद्माकर के संवाद में मिलता है। पुलिस अधिकारी कहता है : "तुमने अपनी संस्था की स्थापना भले ही अच्छे इरादे से की हो, परन्तु ब्रिटिश सरकार निश्चित रूप से उसकी व्याख्या अपने हित विरोधी के रूप में करेगी तथा वह किसी भी उग्र या ब्रिटिश विरोधी राजनीति को कार्यरूप में सहन नहीं करेगी।"

सन् १९१३ की १९ फरवरी को उनकी पुत्री की मृत्यु से उनको गहरा धक्का लगा। इससे वे निःसहाय-से हो गए और अपनी धर्मपत्नी के साथ कुछ दिनों के लिए लोनावाला चले गए। वहाँ भी उनके अनेक मित्र उनकी शोकावस्था में समवेदना व्यक्त करने उसी प्रकार से आते रहे, जिस प्रकार पूना में आया करते थे। वे उस पर्वतीय नगर में लगभग एक मास रहे और इस बीच उनके महान् शोक में ढाढस बँधाने के लिए उनके पिता भी बराबर उनके साथ रहे। पूना लौटने पर उनकी पत्नी बीमार हो गईं, परन्तु सौभाग्यवश यह बीमारी साधारण मलेरिया ही थी। पुत्री के शोक ने उन्हें इतना क्षीण कर दिया था कि बहुत दिनों तक वे ठीक से खा भी नहीं सकते थे और कमरे के अन्दर जाने का भी साहस उनमें नहीं था। उनका शोक बहुत समय तक बना रहा और किसी प्रकार कम नहीं हुआ। उन्होंने अपनी पुत्री का एक गुड़िया के साथ चित्र खिंचवाया था तथा उस चित्र पर यह शब्द लिखे थे "उसका मनोविनोद और हमारा भी"। वे इस चित्र की ओर बड़ी निराशा और पीड़ा के साथ घण्टों निहारा करते थे। उसकी मृत्यु के बाद एक वर्ष तक उन्होंने उसकी स्मृति में सोमवार को उपवास करना शुरू किया। उनकी इस मनोदशा ने उनके लेखन को प्रभावित किया। इस दुःखपूर्ण घटना के बाद कोई भी उपयोगी रचना उनकी लेखनी नहीं दे सकी। वे लिखने को बैठ जाते थे पर लिख नहीं पाते थे। उनके जीवन का सारा सुख जैसे समाप्त हो गया था, तथा उनकी आत्मा क्षोभ और वैराग्य में डूब गई। जब उनकी पुत्री अपनी अन्तिम साँसें गिन रही थी, तब उनका उपन्यास 'कर्मयोग' धारावाहिक रूप से 'करमणुक' में प्रकाशित हो रहा था। यह भी अपूर्ण रह गया। आप्टे ने अपनी मानसिक व्यथा का वर्णन इसी पाक्षिक के दिनांक १५-३-१९१३ के अंक में प्रकाशित लेख 'एक सपना' में किया है।

जब वे सन् १९१४ में धार्मिक बलिदान सम्मेलन में भाग लेने दिल्ली गए, तभी उनकी पत्नी ने उनको पूर्णतः क्लान्त पाकर विवश किया कि वे सोमवार को थोड़ा-बहुत भोजन अवश्य किया करें। वे अपनी पत्नी के साथ

अपना मन वहलाने के उद्देश्य से हरिद्वार, लक्ष्मण झूला, मथुरा, वृन्दावन, आगरा तथा उत्तरी भारत के अन्य स्थानों पर गए, परन्तु इससे कोई परिणाम नहीं निकला। पूना लौटने पर वे पुनः वीमार पड़ गए और दो महीने उन्होंने लोनावाला में व्यतीत किए। उनके डाक्टरों ने वताया कि उनकी वीमारी आहार की कमी के कारण है। धीरे-धीरे उन्होंने ज्यादा पौष्टिक पदार्थ लेना आरम्भ किया। सन् १९१४ के अन्त में उनके पिता नाना साहेव वीमार पड़े और आप्टे उनकी सुश्रूषा के लिए नित्य उपस्थित रहते। उनकी स्थिति विगड़ती गई और फरवरी, १९१५ में उनका स्वर्गवास हो गया। उसी वर्ष तथा उसी महीने में गोखले की भी मृत्यु हो गई। यह फरवरी का महीना उनके लिए दुःस्वप्न-सा हो गया। अव वे जहाँ तक सम्भव था, लोगों के साथ रहना चाहते थे और इसीलिए वे अपने रिश्ते के भाइयों को अपने साथ रहने के लिए ले आए। उनकी एक वुआ भी अपने वच्चों के साथ 'आनन्दाश्रम' में रहने के लिए आ गई। परन्तु सम्वन्धियों के एकत्र होने से भी वे वहुत अधिक आश्वस्त नहीं हो पाए। अतः उन्होंने निर्णय किया कि वे अपने को सार्वजनिक कार्यों में अधिक से अधिक लगावेंगे।

जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, सन् १९१५ में आप्टे वम्वई प्रान्तीय कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष चुने गए। इसमें वे कुछ समय तक व्यस्त रहे। इसी वर्ष सितम्बर मास में वे पूना नगर-पालिका के अध्यक्ष चुने गए और इसके वाद वे अपना अधिकांश समय पूना के नागरिक कार्यों में लगाने लगे। वम्वई विश्वविद्यालय ने सन् १९१५ में उनसे अनुरोध किया कि वे विलसन भाषा वैज्ञानिक भाषण-माला के अन्तर्गत व्याख्यान दें। उन्होंने प्राकृत भाषाओं के विकास, संस्कृत नाटकों में उनके प्रयोग, महाराष्ट्रीय प्राकृत तथा मराठी के सम्बन्ध तथा वाद में ज्ञानेश्वर के पूर्व तथा ज्ञानेश्वर के पश्चात् के मराठी साहित्य पर तीन व्याख्यान दिए। इन व्याख्यानों को जनरुचि के आधार पर तैयार किया गया था, और आधुनिक भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण से वे उतने सन्तोषजनक नहीं हैं।

दिनांक २१ अक्टूबर, १९१६ को अहमदावाद में प्रान्तीय कांग्रेस सम्मेलन श्री जिन्ना की अध्यक्षता में हुआ। स्वर्गीय गोखले द्वारा सुझाए गए सुधारों का प्रारूप श्री जिन्ना ने इस सम्मेलन के समक्ष रखा। इस प्रारूप को तैयार करने में आप्टे का प्रमुख योगदान था। इस सम्मेलन के वाद आप्टे कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में भाग लेने के लिए गए और इसके वाद उन्होंने अपनी मृत्यु पर्यन्त लोकमान्य तिलक की राजनीति को अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया।

अगस्त, १९१६ में उनके दो उपन्यासों 'यशवन्तराव खरे' तथा 'मी' का प्रकाशन हुआ। 'मी' का उपसंहार उन्होंने मूल रूप से चार प्रकार से लिखा था, पर अंत में उन्होंने उसको पसन्द किया; जो आज 'मी' में पाया जाता है (एक उपसंहार वम्वई के मासिक 'मनोरंजन' में १९१९ में प्रकाशित हुआ था)। 'यशवन्तराव खरे' की प्रस्तावना में उन्होंने अपने दो अपूर्ण उपन्यासों 'आजच' तथा 'कर्मयोग' को पूरा करने की इच्छा को व्यक्त किया था। १८७५ के लगभग आप्टे की जो मानसिक आकांक्षाएँ थीं, उन्हीं की कहानी 'मी' में कही गई है। (उपन्यास के लिखे जाने के २० वर्ष पूर्व)। उसमें स्वर्गीय विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के प्रभाव का आभास मिलता है। सन् १९१६ में आप्टे वम्वई विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य निर्वाचित हुए। उन्होंने सार्वजनिक जीवन में अपनी उच्चतम आकांक्षाओं को पूरा कर लिया था। अव उन्होंने धीरे-धीरे अपने सभी कार्यों का समापन करने का विचार किया और अपने श्रेष्ठतम ऐतिहासिक उपन्यासों में से 'वज्रघात' को 'करमणुक' पाक्षिक पत्र में धारा-वाहिक रूप से प्रकाशित करने के वाद सम्भवतः पहला काम जो उन्होंने किया था, वह था 'करमणुक' का प्रकाशन वंद करना। उनके वंधन करीव-करीव समाप्त हो रहे थे। सन् १८९० और उसके वाद किए गए अपने वृहत् कार्यों की वे निश्पत्ति लिख रहे थे। श्री जोशी जैसे उनके परिचित उनके अच्छे स्वभाव का अनुचित लाभ उठा रहे थे। वंगाल के तिस्ता-कुरीग्राम-चिलमारी रेलवे शाखा के शेयरों को वेचने का संकल्प उन्होंने उपकार की प्रवृत्ति से

प्रेरित होकर ही किया था। अपनी मृत्यु के समय तक वे श्री जोशी की ख़ातिर घूम-घूम कर इन शेयरों को बेचते रहे।

पूना के किर्लोस्कर थियेटर में २७ अप्रैल, १९१८ को जनता द्वारा एक सभा ब्रिटिश सरकार की उस नीति का विरोध करने के लिए की गई; जिसके अनुसार सरकार ने दिल्ली में होने वाले युद्ध सम्मेलन में जनता के एक प्रतिनिधि को शामिल न करने का निर्णय किया था। साथ ही जनता की सहानुभूति खोकर ब्रिटिश सरकार यह भी चाहती थी कि वह उनके युद्ध प्रयत्नों में साथ दे। लोकमान्य तिलक ने अध्यक्षता के लिए आप्टे का नाम प्रस्तावित किया। और उन्होंने ब्रिटेन के भारत को आत्मनिर्णय का अधिकार देने के इरादों पर अपना संशय व्यक्त किया। बैरिस्टर घासवाला तथा प्रोफेसर लिमये ने भी इस सभा में भाषण दिए। आप्टे अब लखनऊ-समझौते की भावनाओं के अनुरूप पूर्णतः तिलक के साथ थे, हालांकि श्रीनिवास शास्त्री, आर० पी० परांजपे तथा नरम दल के अन्य कई लोगों को यह पसन्द नहीं था। श्री शास्त्री ने मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों का स्वागत किया और अपना सन्तोष व्यक्त किया। आप्टे ने सभा में अपने अध्यक्षीय भाषण में इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि प्रान्तों तक में इन सुधारों के अन्तर्गत मुश्किल से ही थोड़ा-सा स्वायत्त-शासन प्रदान किया गया है। यद्यपि श्री आर० पी० परांजपे सभा के अध्यक्ष आप्टे को धन्यवाद देने के लिए भाषण देने को खड़े हुए थे, तथापि उन्होंने अध्यक्ष द्वारा व्यक्त किए गए विचारों के विरुद्ध एक लम्बा भाषण ही दे डाला, जो कि एक अजीब-सी बात थी। इसके पूर्व, दिनांक २२ मार्च को लोकमान्य तिलक के लन्दन जाने के पूर्व, जहाँ वे स्वराज्य की माँग करने के लिए एक प्रतिनिधि-मण्डल ले जा रहे थे, जनता की शुभकामनाओं को व्यक्त करने के लिए आप्टे की अध्यक्षता में एक सभा हुई थी। यहाँ आप्टे ने तिलक की प्रशंसा की तथा इस बात की घोषणा की कि किस प्रकार से उनकी राजनैतिक मान्यताएँ जस्टिस रानाडे की छत्रछाया में निर्मित हुई थीं और किस प्रकार वे अब भी उन्हीं मान्यताओं का पालन कर रहे हैं। उन्होंने श्री तिलक

की यात्रा की सफलता की कामना की। यहाँ यह स्मरण किया जा सकता है कि उनके उपन्यास 'कर्मयोग' के तपस्वी पात्र भावानंद पर तिलक तथा उनकी राजनीति का कितना प्रभाव था।

आप्टे नगरपालिका का अगला अध्यक्षीय चुनाव हार गए। वे तिलक के समर्थकों के ईर्ष्या के पात्र वन गए थे और नरम विचारधारा के लोग भी उनसे समान रूप से पृथक् हो गए थे।

आप्टे सन् १९१८ में तिस्ता कुरीग्रामचिलमारी रेलवे के काम से, जिसके शेयर वेचने का निर्णय आप्टे ने श्री जोशी की सहायता करने के लिए किया था, एक मास कलकत्ते में रहे। वाद में जोशी ने पूरा काम आप्टे पर डाल दिया, अतः उन्हें अपने वचन का पालन करने के लिए इन शेयरों को वेचने कई स्थानों पर आना-जाना पड़ा। इसके पहले उनकी आँखें दुखने आ गई थीं और उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा था कि वे अपनी दृष्टि खो रहे हैं। इस कष्ट से वे मुक्ति पा रहे थे कि मलेरिया से आक्रांत हो गए। इसके अतिरिक्त मन्दाग्नि से तो वे पहले से ही पीड़ित थे।

कलकत्ता से वे दिल्ली गए और बाद में महाराजा होल्कर से मिलने इन्दौर गए। वहाँ महाराजा से मिलने के लिए उन्हें रुकना पड़ा, क्योंकि महाराजा कुछ दिन वाद इन्दौर आने वाले थे। इन्दौर प्रवास में एक दिन अपने दैनिक प्रातः भ्रमण से लौटते समय वे ओलों की वर्षा में फँस गए, जिसके परिणाम स्वरूप उनके पेट तथा पैरों में सूजन आ गई। डॉक्टर शारंग-पाणी ने उन्हें जलोदर रोग वताया और शीघ्र घर लौटने की सलाह दी। वाद में वे महाराजा होल्कर से मिले और अपने कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करके इन्दौर से चल पड़े। लेकिन मार्ग में ही खण्डवा में वे फिर वीमार हो गए और उन्हें वहीं पर रुक जाना पड़ा। उन्होंने अपनी पत्नी को तार दिया कि वे नागपुर उनके पास आ जाएँ। भुसावल में आप्टे के स्थान पर दीक्षित के पुत्र को पाकर उनकी पत्नी सशंकित हो गईं। दीक्षित के पुत्र ने उन्हें आप्टे की वीमारी के वारे में विस्तार से वताया और वे लोग वहाँ खण्डवा गए।

आप्टे अपनी पत्नी के साथ वम्बई वापस आ गए। २८ जनवरी को उन्हें वम्बई में लोक सेवा आयोग के समक्ष जन सेवाओं के भारतीकरण पर अपना साक्ष्य देना था। किसी की सलाह न मान कर वे इस काम के लिए चले गए।

दोपहरको उनके स्वास्थ्य की परीक्षा वम्बईके प्रख्यात डॉक्टर श्री भड़कमकर ने की; डॉक्टर ने उन्हें उसी समय पूर्ण विश्राम करने के लिए कहा। हिलने-डुलने तक की विलकुल मनाही कर दी गई तथा उनसे कहा कि लोक सेवा आयोग के समक्ष स्वयं उपस्थित होने के वजाए अपना लिखित वक्तव्य भेज दें। डॉक्टर देशमुख भी उपस्थित थे। डॉक्टरों को भय था कि कहीं उन्हें दिल का दौरा न पड़ जाए; उनका जलोदर अब असाध्य लग रहा था। दो सप्ताह में आप्टे को कुछ आराम हुआ और चिकित्सा की सावधानी से सूजन भी कम हो गई। वम्बई में वे लगभग पाँच सप्ताह तक वीमार पड़े रहे। पूना से उनके सम्बन्धी भी अव उन्हें देखने आने लगे। श्री जोशी भी (रेलवे के शेयरों की बिक्री के मामले वाले) आए, पर उनका आना उन्हें कष्ट देने के लिए ही था; क्योंकि वे अपने साथ व्यापार सम्बन्धी कई प्रकार के कागजात उनसे उसी समय हस्ताक्षर करवाने के लिए लाए थे। आप्टे पुस्तकें और नये प्रकाशनों को पढ़कर किसी प्रकार अपना समय बिता रहे थे। इससे वे अपने दुःख और पीड़ा को कुछ सीमा तक भूल सकने में समर्थ हो रहे थे। वे अपने को अत्यन्त संयत रखते थे तथा अपने कष्ट और क्लान्ति के वावजूद अपने मित्रों से हँसी मज़ाक करने की चेष्टा करते थे। उनके डॉक्टर मित्र भी सलाह व सहायता प्रदान करने के लिए आया करते थे। १९ फरवरी की अशुभ तारीख को, जिस दिन उनकी पुत्री तथा उनके मित्र माननीय श्री गोपाल कृष्ण गोखले की मृत्यु हुई थी, उनकी पीड़ा अत्यधिक वढ़ गई और असह्य हो गई। उनके पेट में सूजन भी बढ़ गई। उनकी चिकित्सा की व्यवस्था डॉ० भाजेकर के अस्पताल में की गई। जो असेटिक फ्लूइड जमा हो रहा था, उसकी रोकथाम के लिए पेट की सफाई करना आवश्यक हो गया था। उसके बाद वे कुछ प्रकृतस्थ हुए पर तभी उन्हें जिगर की खरावी के कारण वेहोशी रहने लगी। इससे उनकी हालत

तेजी से बिगड़ने लगी। डॉक्टर भड़कमकर ने उन्हें पूना ले जाने की सलाह दी। अपने पति के महान् कष्ट की इस अवस्था में श्रीमती आप्टे के दुःख का वर्णन करना कठिन है।

विपदा कभी अकेले नहीं आती। उनके मित्र प्रोफेसर लिमये की मृत्यु का समाचार उनके पास उनकी बीमारी में पहुँचा। किसी तरह उन्हें पूना में अपने घर लौटने के लिए राजी किया जा सका। एक डॉक्टर उनके साथ गया। पूना में किसी ग़लतफहमी के कारण उनको लाने के लिए जो मोटर गाड़ी रेलवे स्टेशन पर आने वाली थी, वह समय से नहीं पहुँच पाई और उन्हें एक पालकी में घर ले जाना पड़ा। गर्मी की तपन तथा पालकी के झटकों से उनकी पीड़ा और भी बढ़ गई। जब पालकी उनके घर के पास पहुँच रही थी तभी उन्हें रक्त की तीन उल्टियाँ हुई। वे बिल्कुल अचेत हो गए। उनकी पत्नी उनके रक्त से भरे वस्त्रों को देखकर मूर्छित हो गई। डॉ० रेले ने पति और पत्नी दोनों की चिकित्सा की। थोड़ी ही देर में उनको पुनः होश आ गया। इसी समय उन्होंने अपनी वसीयत लिखवाई और तैयार किए गए मसविदे पर ज्यों-त्यों करके हस्ताक्षर किए। उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखा और उनसे कहा कि अपनी वसीयत में परिवार के लिए यथासम्भव अच्छे प्रबंध कर दिए हैं। उन्हें याद आया कि उनके बीमे की किश्त के भुगतान की तारीख भी उसी दिन पड़ रही थी। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि वे उसके भुगतान का इन्तजाम कर दे।[1]

अन्त तक वे शान्त रहे: और लगता था कि अपनी पत्नी के लिए वे केवल मात्र अपनी इच्छा शक्ति के द्वारा तीन घण्टे और जीवित रहे।

---

१. उन्होंने अपनी वसीयत के द्वारा अपनी कृतियों के सर्वाधिकार सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी तथा आर्य भूषण प्रेस (सोसायटी से सम्बद्ध संस्था) को दे दिए। उनकी पत्नी को उनकी मृत्यु तक ५० रुपये प्रतिमास की पेंशन उनसे पाने की व्यवस्था थी। उनकी पत्नी के रहने के लिए 'आनन्दाश्रम' में प्रबन्ध था।

३ मार्च, १९१९ की सन्ध्या को लगभग सात बजे उन्होंने अन्तिम साँस छोड़ी और उस अनन्त जीवन की ओर प्रस्थान किया, जहाँ उनका विश्वास था कि वे अपनी प्रिय बेटी शान्ता से मिल सकेंगे।

इस प्रकार से एक महान् साहित्यिक जीवन का अन्त हो गया।

पूना के सभी वर्गों और राजनैतिक दलों ने उनकी मृत्यु पर शोक मनाया। 'केसरी' (लोकमान्य तिलक का पत्र) ने भी उनके व्यक्तिगत गुणों और उनके राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक कार्यों की प्रशंसा करते हुए अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

५. कृतित्व

आधुनिक मराठी साहित्य के आप्टे प्रथम महान् उपन्यासकार थे तथा उन की रचनाओं में सामाजिक उपन्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है।

उन्होंने सात सम्पूर्ण सामाजिक उपन्यास लिखे: (१) मधली स्थिति (मध्य की स्थिति); (२) पण लक्षात कोण घेतो (परन्तु किसे परवाह है?); (३) यशवन्तराव खरे; (४) मी० (मैं); (५) मायेचा बाजार (माया बाजार); (६) भयंकर दिव्या (भयंकर परीक्षा); (७) जग हे असे आहे (जग ही ऐसा है)। तीन और उपन्यास भी हैं जो अपूर्ण हैं: (८) गणपतराव; (९) आजच (आज) तथा (१०) कर्मयोग (कर्तव्य)।

उनके सामाजिक उपन्यासों में अधिकतर पूना के समाज की पचास वर्षों के समय की अवस्था का चित्रण है। वे मध्यम वर्गीय जीवन का एक यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं। अंग्रेजी प्रभाव के कारण उसमें उत्पन्न हुई बुराइयों को हमारी दृष्टि के सामने रखते हैं तथा समाज के विकास के लिए सुझाव देते हैं। वे हमारी विनाशकारी रूढ़िवादी परम्परा के हानिकारक प्रभावों को प्रस्तुत करते हैं तथा हमारी उन बुराइयों की आलोचना करते हैं, जिनमें हम ब्रिटिश आचारों तथा मान्यताओं के अविवेकपूर्ण अनुकरण के परिणाम स्वरूप पड़ गए हैं।

वे सामाजिक सुधार के लाभप्रद प्रभावों को भी दर्शाते हैं, जब शिक्षित पुरुष और स्त्रियाँ समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के लिए अपने-आपको समर्पित कर देते हैं। वे नए समाज के आदर्शवादी दृश्य का भी अत्यन्त श्रेष्ठ चित्रण करते हैं। उनमें निरीक्षण की बहुत बड़ी शक्ति थी; इसके साथ ही अनेक अंगरेजी, मराठी और संस्कृत लेखकों की विविध विषयों पर लिखित रचनाओं को पढ़ने से उन्हें एक व्यापक नवीन दृष्टिकोण बनाने में सहायता मिली, जिसका प्रचार वे अपने उपन्यासों और लघुकथाओं में

प्रभावशाली ढंग से कर पाए। अंग्रेजों के अनुकरण करने की प्रवृत्ति से मद्यपान तथा नैतिक असंयम जैसी बुराइयाँ चारों ओर व्याप्त हो गई थीं। उनके प्रथम उपन्यास 'मधली स्थिति' (मध्य की स्थिति) का मर्म हमारा सामाजिक पतन है। सामाजिक विषयों में शासन तथा शिक्षा सम्बन्धी नए विचारों से आने वाली महान् जागृति उनके उपन्यास 'गणपतराव' की विषयवस्तु है, जब कि उनका उपन्यास 'पण लक्षात कोण घेतो' (परन्तु किसे परवाह है?) संयुक्त परिवार की कठिनाइयों और बुराइयों के उनके निजी अनुभवों पर आधारित है। इसमें हमारी सामाजिक प्रथाओं में आई हुई बुराइयों का जिक्र करते हुए हमारे समाज-सुधारकों के प्रयासों को प्रकाश में लाया गया है और साथ ही उसमें स्त्रियों की दयनीय स्थिति का, उनकी सम्पूर्ण पराधीनता का और उनमें शिक्षा का अभाव तथा स्त्रियों और पुरुषों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मामले में धार्मिक अंकुशों का विशेष उल्लेख है। उनके दो अन्य उपन्यासों 'यशवन्तराव खरे' तथा 'आजच' (आज) में हमारे राजनैतिक और सामाजिक सुधारकों के संघर्ष का विस्तृत प्रभाव है। उपन्यास 'मी' (मैं) में भी हमारे देश की प्रगति के प्रयासों तथा राजनीति में हमारे आदर्शों का चित्रण है। हमारे देश की महिलाओं की शिक्षा, उनकी आकांक्षाएँ तथा इन आकांक्षाओं की पूर्ति न होने के कारण उत्पन्न कुण्ठा तथा बदलती हुई परिस्थितियों में सामाजिक अक्षमताएँ उनके उपन्यास 'भयंकर दिव्या' (भयंकर परीक्षा) तथा 'मायेचा बाजार' (माया बाजार) के मुख्य विषय हैं। आप्टे अपने तीन उपन्यासों में वर्णनात्मक तथा आत्मकथात्मक दोनों शैलियों का प्रयोग करते हैं। इन उपन्यासों की यथार्थता उन पुराने उपन्यासों से निश्चित रूप से भिन्न है, जिनमें अलौकिक उपकरणों तथा मनचाहे संयोगों का प्रयोग किया जाता था। आधुनिक यथार्थवादी साहित्य में कुरूपता तथा अश्लीलता, पथभ्रष्टता तथा मानसिक विकार का जो चित्रण मिलता है, वह आप्टे के उपन्यासों में नहीं मिलता। एक उपन्यास के पात्र कभी-कभी दूसरे में भी आ जाते हैं; उदाहरण के लिए 'मधली स्थिति' के विष्णु और

यमुना 'गणपतराव' तथा 'पण लक्षात कोण घेतो' में पुनः दिखाई देते हैं। गणपतराव इसी नाम के उपन्यास का एक चरित्र है जो 'आजच', 'कर्मयोग' तथा 'भयंकर दिव्या' में पुनः प्रगट होता है। इसी प्रकार से नाना तथा उसकी पत्नी यशोदा 'पण लक्षात कोण घेतो' तथा 'कर्मयोग' में आते हैं। स्वामी अद्वैतानन्द तथा लिली 'आजच' तथा 'कर्मयोग' में आते हैं। ताई 'भयंकर दिव्या' और 'कर्मयोग' में पाई जाती है। कुछ चरित्रों के पुनः प्रवेश द्वारा उपन्यासों के अन्तर सम्बन्ध की यह प्रथा कुछ अंगरेजी और फ्रांसीसी उपन्यासों से ली गई है।

'पण लक्षात कोण घेतो' उपन्यास स्पष्टतः परम्परा के अनुसार हिन्दू विधवाओं के सिर मुड़ा देने के दुख और अपमान का चित्रण करने के लिए लिखा गया है। निस्सन्देह आप्टे ने इस बुरी प्रथा को व्यक्तिगत रूप से देखा था तथा इसके वर्णन में उन्होंने मानों अपने हृदय को उंडेल दिया है। शंकर मामन जी (ससुर शंकर) का चित्रण इतना सुन्दर हुआ है कि वह क्रूर तथा कठोर पाखंडियों के लिए नाम बन गया है। महाराष्ट्र में इस उपन्यास से जो उत्तेजना और जागृति फैली, उसकी तुलना मिस हैरियट स्टो के उपन्यास 'अंकल टाम्स केबिन' से की जा सकती है। इस उपन्यास में संयुक्त परिवार की बुराइयों को भी बताया गया है। इन उपन्यासों को उस समय के अंग्रेज शासकों और ईसाई मिशनरियों ने अपने अधिकार में ले लिया था तथा हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की आलोचना के लिए उन्हें मनचाहे ढंग से प्रस्तुत किया था। इस पक्षपात पूर्ण आलोचना में संयुक्त परिवार-पद्धति के लाभों की अधिकतर उपेक्षा की गई तथा उन लाभों को तभी कुछ हद तक समझा जाने लगा, जब हमारे सामाजिक और आर्थिक ढांचे का अध्ययन स्वदेशी विचारकों द्वारा किया गया। इस उपन्यास में केवल हानियों का वर्णन किया गया है।

उपन्यास 'यशवन्तराव खरे' आप्टे के समय में प्रचलित राजनैतिक विचारों का विश्लेषण करता है। सामाजिक अथवा राजनैतिक सुधारों द्वारा शीघ्र स्वतंत्रता प्राप्त करने में प्राथमिकता प्रदान करने पर जो विचारों में

विभिन्नता थी, उसे बड़ी ही स्पष्टता से प्रस्तुत किया गया है। वैसे अपने उत्साह में अंग्रेज शासकों द्वारा प्रशिक्षित हुए सामाजिक सुधारकों ने सामाजिक सुधार को ही केवल प्राथमिकता दी और राजनैतिक नेताओं के प्रयत्नों को नीचा दिखाया। समय ने सिद्ध कर दिया कि राजनैतिक नेताओं का विवेक और महत्व अधिक था। यह एक ऐसा संयोग था कि जस्टिस तेलंग जैसे प्रख्यात उदारवादियों ने भी इसे शीघ्र ही स्वीकार कर लिया, जो पहले इनमें से प्रथम मत के प्रति झुकाव रखते थे। उपन्यास में चित्रित राजनीति का वर्णन कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है; क्योंकि किसी भी राजनीतिज्ञ ने कभी भी सामाजिक सुधार का न तो उपहास किया और न ही वे उनसे कतराए। राजनीतिज्ञों ने कभी भी स्त्रियों के प्रति कोई अनादर नहीं व्यक्त किया और न ही वे स्त्रियों की समस्याओं के प्रति अनुदार या असंवेदनशील थे। यशवन्तराव किसी प्रकार से महान् विद्वान् और देशभक्त विष्णुशास्त्री चिपलूणकर का व्यंग चित्र बन जाता है। आप्टे जैसे इतने बड़े मराठी लेखक की रचना में इस प्रकार का हल्कापन वस्तुत: खेद की बात है। किंतु इतना तो स्पष्ट ही है कि उनके सामाजिक सुधार को प्राथमिकता देने का नया-नया उत्साह ही इसका कारण था।

उपन्यास 'मी' इससे अच्छी कृति है। देश-प्रेम के लिए अनेक वस्तुओं के त्याग की आवश्यकता को इसमें दर्शाया गया है। भाऊ के चरित्र (जो बाद में उपन्यास में भावानन्द हो जाता है) में आध्यात्मिकता और आत्म-त्याग के गुणों का संयोग है। उसे सुन्दरी के लिए अपने प्रेम का भी त्याग करते हुए दिखाया गया है। यह उपन्यास अपने विषय की सार्वभौमिकता के कारण सदैव नवीन रहेगा। भाऊ ने एक संन्यासी के रूप में अपने पूरे जीवन को देश की सेवा करते हुए बिता दिया।

'जग हे असे आहे' उपन्यास का उद्देश्य शुद्ध मनोरंजन है। इसमें एक सौतेले पुत्र और उसकी पत्नी का चित्रण है, जो अपनी सौतेली माँ और उसके बच्चों को परेशान करते हैं। इस उपन्यास में सौतेली माँ और उसके बच्चे अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध जीवन की ओर बढ़ते दिखाए गए हैं, जो इस

प्रकार से जीवन में बुराई के ऊपर अच्छाई की विजय का परम्परागत चित्र प्रस्तुत करते हैं। श्री फेयर ब्रेन नामक एक मिलनसार संवेदनशील अंग्रेज, श्री वुलीस्नीक नामक क्रूर अंग्रेज अधिकारी तथा सिस्टर चैरिटी नामक मानवतावादी मिशनरी महिला इस उपन्यास के अन्य आकर्षण हैं, जो उन दिनों कई अंग्रेजों द्वारा किए गए अच्छे कार्यों को प्रदर्शित करते हैं।

'भयंकर दिव्या' में एक पढ़ी-लिखी सुशील लड़की कमला की, जो बलवन्त राव तथा उनकी पुनर्विवाहित पत्नी की पुत्री है, उन कठिनाइयों का वर्णन है; जिनका सामना उसे अपने रूढ़िवादी पिता की इच्छा के विरुद्ध पद्माकर से विवाह करने पर करना पड़ता है। खलनायक राजाराम द्वारा बहकावे में आकर पद्माकर अपनी पत्नी के चरित्र पर सन्देह करने लगता है और उसे कुछ समय के लिए त्याग देता है। जब राजाराम की दुष्टता खुल जाती है तो दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है। श्री आप्टे संभवतः यह दर्शाना चाहते थे कि एक शिक्षित कन्या के सुखी जीवन की कल्पना उस समाज की वास्तविकता के साथ मेल नहीं खाती थी। दम्पति में परस्पर प्रेम तथा विश्वास ही सुखी विवाहित जीवन के लिए सहायक है।

'मायेचा वाजार' उपन्यास अपने उद्देश्यों में कम स्पष्ट है। इस कहानी का सम्बन्ध शिक्षित और ईमानदार पद्मा से है, जो जीवन भर अपने पति द्वारा सताई जाती है। इसका कारण पति की धनलिप्सा तथा उत्पीड़क स्वभाव है; जब कि उसका प्रेमी वसन्तराव अपने प्रेम की निष्ठा में अविवाहित रह कर अपने जीवन का अन्त कर लेता है।

'आजच' एक अपूर्ण उपन्यास है। अन्य उपन्यासों के कई पुराने चरित्र कुछ नए चरित्रों के साथ इसमें हमें मिलते हैं। आप्टे संभवतः इसमें इस विशाल राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए अपने रचनात्मक विचार प्रस्तुत करना चाहते थे। इसीलिए इसमें हमें ऐसे चरित्र मिलते हैं, जैसे यशवन्तराव; जो राजनीतिक प्रगति के बारे में सोचा करते हैं। गणपतराव जो सामाजिक

विकास को राजनीतिक सुधारों के ऊपर प्राथमिकता देना पसन्द करते हैं; कृष्णबापू जो देश के औद्योगिक विकास के बारे में सोचते हैं तथा अद्वैतानन्द उन लोगों के लिए, जो राष्ट्र के कार्यों के लिए निःस्वार्थ भाव से अपने को उत्सर्ग कर सकते हैं, संन्यास की अवस्था को बड़े उत्साह से पुनः स्थापित करना चाहते हैं। संभवतः आप्टे भावानन्द के विचारों की सफलता दिखाना चाहते थे, जो देश की सर्वांग प्रगति चाहता था और जिसे उल्लिखित चारों व्यक्तियों के विरोध का सामना करना पड़ा। इन बाधाओं के होते हुए भी वह अपने उद्देश्य की ओर बढ़ता जाता है।

'कर्मयोग' भी अपूर्ण है तथा आप्टे के धारावाहिक उपन्यासों की श्रृंखला में अन्तिम है। इसके कथानक की रचना गणपतराव के पुत्र चन्द्रशेखर तथा उसकी रिश्ते की बहन लिली को लेकर की गई है। चन्द्रशेखर जिसमें पश्चिमी शिक्षा के कारण, एक नास्तिक तथा राष्ट्रवादी होने की प्रवृत्ति है, एक गहन दार्शनिक विचारक स्वामी अद्वैतानन्द के सम्पर्क में आता है। संभवतः वे यह दिखाना चाहते थे कि सभी कार्यों की सफलता के लिए धार्मिक विश्वास का आधार आवश्यक है। भावानन्द की संस्था के आदर्शों के लिए वह अपने-आपको समर्पित करता हुआ-सा लगता है। उसके काम के समानांतर है समाज-सुधार के लिए लिली का आत्मोत्सर्ग का संकल्प। वह सांसारिक सुखों का तथा विवाहित जीवन का त्याग कर देती है। उपन्यास में व्याप्त विचार है धार्मिक विश्वासों के साथ आत्म-त्याग करना।

आप्टे की चरित्र-चित्रण की कला सुन्दर है। यह सुन्दरता न होती तो उनकी कला में कमी रह जाती। उनके पात्र अधिकांशतः वास्तविक जीवन से लिये गये हैं। इससे सत्य का पुट और आकर्षण उत्पन्न हो गया है। अपने कुछ उपन्यासों में जो थोड़ा-सा रहस्य वे बनाए रखते हैं, उसका कारण यह है कि वे डिकन्स और जेन आस्टिन का अनुकरण करते हैं। इससे कुछ परिणामों की आशा अवश्य बढ़ जाती है तथा युवा पाठकों को

आकर्षित करती है। 'मायेचा वाजार' के गिरोह के दुष्कर्म या 'भयंकर दिव्या' में राजाराम का रहस्य इन उपन्यासों को अधिक पठनीय वना देता है। आप्टे ने 'पण लक्षात कोण घेतो', 'मी', तथा 'यशवन्तराव खरे' में पूर्वसूचक स्वप्नों (जिनकी सत्यता में वे संभवतः विश्वास करते थे) का प्रयोग भी किया है। उपन्यासों में जो थोड़ा-सा रहस्य है, उससे परिस्थितियाँ जटिल हो जाती हैं और पाठक में कौतूहल उत्पन्न होता है। इन रहस्यों के वावजूद उपन्यासों के कथानकों की रचना वड़ी ही वुद्धिमानी से की गई है। उपन्यासों की यथार्थवादिता एक और मुख्य आकर्षण है तथा इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आत्मकथात्मक शैली का उपयोग अत्यन्त लाभप्रद ढंग से किया गया है। कुछ पाठक इस यथार्थवाद से पर्याप्त प्रभावित हुए और कुछ स्त्रियाँ तो इसमें भी सन्देह करने लगीं कि 'पण लक्षात कोण घेतो', (जो यमुना की आत्मकथा के रूप में लिखा गया है।) के लेखक आप्टे हैं। चरित्रों की विविधता आश्चर्यजनक है तथा इससे अपने चारों ओर के समाज का उनका तीक्ष्ण निरीक्षण अभिव्यक्त होता है।

आप्टे ने अपने उपन्यासों को पत्रिकाओं में धारावाहिक रूप से प्रकाशित करवाया था, जिसके परिणामस्वरूप इनमें अति विस्तार का दोप आना अवश्यम्भावी था। कुछ अध्यायों के अन्त में एक नवीन संकट का उत्पन्न होना उनके लेखन के गुणों को कम कर देता है। परन्तु यह वात अपेक्षित थी, जैसा कि उदाहरणस्वरूप, स्काट और डिकन्स के विपय में भी ऐसा ही हुआ था। लिखने और प्रकाशन के वीच जो व्यवधान था उसके परिणामस्वरूप त्रुटियाँ उत्पन्न हुईं—वसे यह स्वीकार करना होगा कि ये त्रुटियाँ वहुत कम हैं। अति विस्तार के कारण उनके प्रशंसकों में आज कुछ कमी अवश्य आई है। अपने अन्य कार्यों के वीच कभी-कभी दो या तीन उपन्यासों के समकालीन रूप से क्रमिक प्रकाशन से अक्सर इनमें से पुराने उपन्यासों पर उनकी पकड़ ढीली हो जाती थी तथा इससे इनके कथानकों में रुचि अथवा पाठकों का कौतूहल शिथिल हो जाता है। इस प्रकार के उपन्यासों

का अपूर्ण रहना निश्चित था। कथानकों के निर्माण में कभी-कभी समरूपता लक्षित होती है जिससे कि संवादों में भी एकरूपता आ जाती है। चरित्रों की विशाल भूमिकाओं को उन्हें किसी प्रकार अन्तिम अध्याय में ही आकर समेटना पड़ता है। आधुनिक पाठक को यह सब अत्यन्त अव्यवस्थित लगता है।

यशवन्तराव, गणपतराव, भावानन्द तथा चन्द्रशेखर उनके सामाजिक उपन्यासों के अविस्मरणीय चरित्र हैं। वे कुलीनता, ज्ञान तथा देशप्रेम के प्रतिरूप हैं। गोविन्दराव, शंकर मामन जी, राजाराम तथा चिन्तोपन्त जैसे खलनायक भी अपनी निपट दुष्टता के कारण, जिसे कम करने के लिए उनमें कोई भी अच्छाई नहीं है, अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं। स्त्री पात्रों में लक्ष्मीबाई, यशोदाबाई, यमुनाताई, सुन्दरी, पद्मा, कमला, द्वारकाताई तथा लिली पाठकों का ध्यान सदैव आकर्षित करती हैं। लक्ष्मीबाई, यशोदाबाई तथा यमुना हमारे सामने आप्टे का विवाहित स्त्रियों का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। वे प्राचीन भारतीय परिवार के सर्वश्रेष्ठ सद्गुणों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो साठ वर्ष पूर्व के उन दिनों के वातावरण के अनुकूल है। वे अत्यन्त सुशील, निष्ठापूर्ण, सुचरित्र और विनयशीलता की आदर्श हैं। ताई, सुन्दरी या लिली आप्टे के स्वप्नों की प्रगतिशील नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं। आज तो वे बिल्कुल वास्तविक लगती हैं। उनमें संस्कृति और विचारों की आदर्श स्वतंत्रता है।

आप्टे ने एक बार मत प्रगट किया था कि उन्होंने अपने किसी भी चरित्र का चित्रण अपने व्यक्तिगत अनुभवों से परे जाकर नहीं किया है। यह एक महत्वपूर्ण वक्तव्य है तथा तथ्यों से इसकी पुष्टि होती है। विनायक राव, गोविन्दराव, डॉक्टर मुंगले, गोपालराव और अनन्तराव के चरित्र वस्तुतः वास्तविक लोगों के चित्र हैं। हर्ष निधान थिएटर पूना का विजयानन्द नाटक घर था, जब कि 'शंखध्वनि' साप्ताहिक 'पूना वैभव' था। यह सब 'मधली स्थिति' में से है। यमुना भी एक यथार्थ स्त्री का चित्र है और उसके सभी कष्टों का चित्रण सच्चे अनुभव के आधार पर किया गया है।

गणपतराव आंशिक रूप से स्वयं लेखक हैं और यही बात भाऊ के स्कूल के दिनों तथा भावानन्द के आदर्शवाद पर लागू है। यशवन्तराव के गुरु श्रीधर पन्त कुछ हद तक विष्णुशास्त्री चिपलूणकर का चित्रण है। यशवन्तराव ('आजच' में) महान् नेता लोकमान्य तिलक के चरित्र का ही चित्रण है। कृष्णराव नामक पात्र की प्रेरणा श्रीनाम जोशी से मिली थी। 'कर्मयोग' में डेकन कॉलेज के प्रिंसिपल बेन अमर हो गए हैं, जब कि अन्य अंग्रेज़ सज्जन फेयरब्रेन तथा बुलीस्नीक के रूप में मिलते हैं। सिस्टर चैरिटी का चरित्र भी सत्य है।

उनके उपन्यास यथार्थवादी हैं तथा उनमें आप्टे ने जिस समाज को अपने आस-पास पाया था, उसकी समस्त विशेषताओं, सद्गुणों और बुराइयों के साथ वास्तविक चित्रण किया है। उनके कुछ चरित्र इस अर्थ में आदर्शवादी हैं कि वे उन आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्हें वे मानते थे—प्रेम, कर्तव्य, सज्जनता, सौन्दर्य तथा बुद्धि के आदर्श। वे आदर्श काल्पनिक नहीं हैं और न ही अप्राप्य हैं, वे किसी की उपलब्धि की सीमा के परे भी नहीं हैं। जिन आदर्शों को उन्होंने प्रस्तुत किया था, उन्होंने महाराष्ट्र के सामाजिक विकास तथा सामाजिक और नैतिक स्तरों को ऊँचा उठाने में अपना योगदान दिया है। आप्टे की सबसे बड़ी विजय इसी में है। विशेष रूप से स्त्रियों के प्रति उनके संवेदनशील व्यवहार में। उस रूढ़िनिष्ठता, संकीर्ण मनोवृत्ति, अज्ञान तथा सहानुभूति की कमी की आज कोई कल्पना तक नहीं कर सकता है, जो साधारणतः उस बीते हुए जमा नेमें स्त्रियों के प्रति पुरुषों के व्यवहार में थी।

इनके सामाजिक उपन्यासों का आकर्षण उपयुक्त संवादों तथा सुन्दर वर्णन में निहित है। लड़के और लड़कियों के बचपन के जीवन के, लड़कियों की किशोरावस्था के तथा उनके विवाह के बाद के, अपने आदर्शवादी नायकों और नायिकाओं के पतियों और पत्नियों के जो चित्र उन्होंने प्रस्तुत किए हैं, वे सभी अत्यन्त आकर्षक और सत्य हैं। दुःख और करुणा का उनका चित्रण हृदय विदारक है। उनका प्राकृतिक वर्णन नदियाँ,

पहाड़, जंगल, वृक्ष, प्रातःकाल तथा संध्याकाल, सूर्योदय तथा सूर्यास्त सभी पूर्णतः सही और यथातथ्य हैं और उनकी वर्ड्सवर्थवादी मान्यताओं को सिद्ध करते हैं। 'कर्मयोग' में वनेश्वरी या 'आजच' में हिमालय का वर्णन जैसे अंश अत्यन्त मोहक हैं। उनके उपन्यासों में महाराष्ट्र के उनके समकालीन समाज की परम्पराओं तथा शिष्टाचार, अन्धविश्वासों तथा धार्मिक मान्यताओं का अपूर्व ज्ञान दिखाई पड़ता है। सामाजिक सुधारों के लिए जो सुझाव उन्होंने रखे थे, वे यथार्थवादी तथा तीखे थे। उनके विचार एकपक्षीय नहीं थे। उन्होंने राजनीति तथा उद्योग दोनों में सुधारों की आवश्यकता पर बल दिया। लोकहितवादी, फुले या आगरकर की तरह कठोर भाषा में सुधारों की कड़वी और तेज वकालत द्वारा उन्होंने पुरानी पीढ़ी को नाराज नहीं कर दिया। वे सभी सुधार, जिनकी उन्होंने इच्छा की थी, उन्हीं के समय में या उनके बाद लागू कर दिए गए। यह उनकी रचनाओं की सफलता का प्रमाण है। सन् १८८५ के बाद के नवीन मराठी उपन्यासकारों में वे सबसे आगे हैं तथा उन्हें आधुनिक मराठी उपन्यास का जनक कहना उचित ही है। उनके उपन्यास तब तक अपना प्रभाव जमाए रहे, जब तक प्रोफसर वी० एम० जोशी १९१३ में, अपने उपन्यास 'रागिनी' के साथ इस क्षेत्र में प्रविष्ट नहीं हुए। आप्टे के उपन्यासों का प्रभाव आज भी कम नहीं हुआ है। वैसे द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आरम्भ होने वाले युग के नए मराठी साहित्य में भी नई विधाएँ शुरू हुईं, जो पुरानी विधाओं पर हावी हो गईं।

६. ऐतिहासिक उपन्यास

ऐतिहासिक उपन्यासों को आप्टे ने आकर्षण प्रदान किया। इससे पहले ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम प्रकाशित हुआ करते थे। आप्टे ने परम्परा और इतिहास का स्रोत के रूप में उपयोग किया। ऐतिहासिक विषयों और चरित्रों का उपयोग करने में अनेक खतरे हैं, क्योंकि इतिहास पहले से ही सत्य का वर्णन एक निष्पक्ष भाव से कर चुका होता है तथा उपन्यासकार के पास अपने चरित्र को ढालने अथवा किसी चरित्र का अपनी इच्छानुसार विकास करने की बहुत कम स्वतंत्रता रह जाती है। इसीलिए ऐतिहासिक कथा-साहित्य लिखने वालों में सदैव यह प्रचलन रहा है कि वे ऐतिहासिक वातावरण का प्रयोग करते हैं और प्रख्यात ऐतिहासिक चरित्रों का उपयोग अपने उपन्यासों में बहुत कम करते हैं। वे एक निश्चित वातावरण में अपने चरित्रों का स्वयं निर्माण करते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास साधारणतः अपनी कल्पनात्मक व्याख्या द्वारा इतिहास के पूरक बनते हैं। वास्तव में ऐतिहासिक कथा-साहित्य एक अर्थहीन संज्ञा है, क्योंकि यदि वह इतिहास है तो कथा-साहित्य नहीं और यदि वह कथा-साहित्य है तो इतिहास नहीं है। इस द्विविधा को सुलझाने के लिए केवल ऐतिहासिक वातावरण का ही उपयोग करना होता है तथा इसके साथ कल्पना द्वारा उस परिवेश में काल्पनिक चरित्रों को प्रतिस्थापित करना होता है। आप्टे ने इस क्षेत्र में महान् सफलता पाई। उन्होंने राजपूतों तथा मराठों दोनों के मध्ययुगीन भारतीय इतिहास से कथावस्तु का चयन किया।

मराठा इतिहास की स्रोत सम्बन्धी सामग्री को प्रकाशित करने के लिए उस समय वृहत् कार्य चल रहा था, क्योंकि चिपलूणकर ने एक ऐतिहासिक पत्रिका निकाल कर तथा इतिहास के विषय पर स्वयं भी लिखकर इस कार्य को गति प्रदान की थी। सन् १८८५ में शिवाजी महान् की रायगढ़ स्थित समाधि का पुनरुद्धार करने का कार्य आरम्भ हुआ था। जस्टिस

रानाडे ने अपनी पुस्तक 'राइज़ ऑफ़ मराठा पावर' (मराठा शक्ति का उदय) लिखकर उसमें मराठा इतिहास का एक सही दृष्टिकोण प्रदान किया था, जिसे ग्रान्ट डफ ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ दि मराठाज़' (मराठों का इतिहास) में विकृत ढंग से प्रस्तुत किया था। तिलक ने शिवाजी उत्सवों का आरम्भ भी कर दिया था। यह एक ऐसा वातावरण था, जिसने आप्टे को ऐतिहासिक कथा-साहित्य लिखने को प्रेरित किया।

आप्टे ने ग्यारह ऐतिहासिक उपन्यास लिखे : (१) 'मैसूरचा वाघ' (मैसूर का शेर) १८९१ में; (२) 'ऊषाकाल' १८९७ में; (३) 'केवल स्वराज्य सार्थी' (केवल स्वराज्य के लिए) १८९९ में; (४) 'रूपनगरची राजकन्या' (रूपनगर की राजकुमारी) १९०२ में; (५) 'गढ़ आला पण सिंह गेला' (गढ़ मिल गया पर सिंह चला गया) १९०३ में; (६) 'चन्द्रगुप्त' १९०४ में; (७) 'सूर्योदय' १९०८ में; (८) 'मध्याह्न' १९०८ में; (९) 'सूर्यग्रहण' १९०९ में; (१०) 'कालकूट' १९११ में तथा (११) 'वज्राघात' १९१५ में। संख्या आठ, नौ, और दस अपूर्ण उपन्यास हैं। इनमें शिवाजी के तथा पेशवाओं के प्राचीन और मध्ययुगीन, ऐतिहासिक प्रकरण मिलते हैं। आप्टे जिस युग के बारे में लिखते थे, उससे सम्बन्धित सभी अंग्रेजी तथा मराठी की प्राप्त सामग्री का अध्ययन कर लिया करते थे। उन्होंने 'चन्द्रगुप्त' के लिए 'पद्मपुराण' तथा संस्कृत नाटक 'मुद्राराक्षस' का अध्ययन किया था। उन्होंने अंग्रेजी में अनूदित फारसी मुस्लिम वृत्तान्तों तथा अन्य मराठी प्रकाशनों का अध्ययन मध्ययुगीन तथा शिवाजी और पेशवा कालों के लिए किया था। इनमें से अन्तिम के लिए उन्होंने अंग्रेजों द्वारा लिखित इतिहासों से भी सामग्री प्राप्त की थी। उनका उपन्यास 'मैसूरचा वाघ' मीडोज़ टेलर के 'टीपू सुल्तान' पर आधारित है।

'चन्द्रगुप्त' में स्वयं राजा, कौटिल्य, मुरादेवी तथा पर्वतेश (अर्थात् पोरस) ऐतिहासिक चरित्रों पर आधारित हैं। 'कालकूट' में पृथ्वीराज चौहान तथा जयचन्द प्रख्यात ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं। 'ऊषाकाल' में शिवाजी,

तानाजी, येसाजी, कवि रामदास, दादाजी (या दादोजी कोणदेव) जीजावाई (शिवाजी की माता) तथा मुरारपन्त (वीजापुर में) ऐसे यथार्थ चरित्रों के साथ इतिहास का बहुत थोड़ा मर्म प्रस्तुत किया गया है, परन्तु एक स्पष्टत: ऐतिहासिक वातावरण में घटनाओं के काल्पनिक पूर्णगठन की अधिक चेष्टा की गई है। 'सूर्योदय' में अफजल खाँ, शिवाजी, नेताजी, गोपीनाथपन्त (कूटनीतिक प्रतिनिधि) ऐसे वास्तविक ऐतिहासिक पात्र हैं। प्रतापगढ़ का युद्ध तथा अफजल खाँ की मृत्यु के इतिहास पर आधारित कथानक प्रदान करते हैं। 'सूर्यग्रहण' में जयसिंह के अनुरोध तथा आश्वासनों पर शिवाजी की ऐतिहासिक आगरा-यात्रा और बाद में औरंगजेब द्वारा उनके हिरासत में लिए जाने की कथा है। 'गढ़ आला पण सिंह गेला' में तानाजी द्वारा उदयभानु से सिंहगढ़ को छीन कर विजय प्राप्त करने का वर्णन है। सूर्याजी, शेलरमामा तथा रायबा ऐसे पात्रों से सम्बन्धित वातावरण भी समुचित रूप से ऐतिहासिक हैं। सूर्याजी के चरित्र से उनके काल्पनिक अपराध को आजकल अलग किया जा रहा है। उपन्यास 'केवल स्वराज्य साथी' में शिवाजी की मृत्यु में, औरंगजेब की सेनाओं द्वारा रायगढ़ पर कब्जा किए जाने में, राजाराम के जिन्जी जाने में तथा संभाजी के पुत्र शिवाजी तथा उनकी माँ येसूवाई के औरंगजेब द्वारा वन्दी वनाए जाने में मूल ऐतिहासिक सत्य हैं। 'वज्राघात' में तालीकोट के युद्ध और हिन्दूराज्य विजयनगर के नष्ट होने का चित्रण है। यह पूरा उपन्यास राजाराम को छोड़कर अपने वहुत से पात्रों के मामले में काफी हद तक काल्पनिक है।

आप्टे ने वहुत से परम्परागत विवरणों का पूरा उपयोग किया, परन्तु उन्होंने अपने समय के ही स्त्रियों और पुरुषों को इतिहास का वाना पहना दिया; जैसा कि स्काट ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में किया था। तहखानों, मन्दिरों, गुप्तचरों, सामन्तों, महलों तथा वीजापुर, आगरा, रायगढ़, पूना, आदि राजनीतिक राजधानियाँ आदि सभी का उपयोग उपन्यासों में इतिहास के अनुरूप एक मध्ययुगीन वातावरण के पुनर्निर्माण के लिए किया गया है।

परन्तु उपन्यासों के युवा पुरुष और स्त्री पात्र, जिनमें अधिकांश काल्पनिक हैं, आप्टे के समकालीन युवा देशभक्तों के स्वरों में बोलते हैं। इनमें से अधिकांश उपन्यासों के प्रथम अध्याय उसी प्रकार से अत्यन्त आकर्षक हैं, जिस प्रकार नाटकों के प्रथम दृश्य होते हैं। रहस्य का निर्माण तथा उसको बनाए रखने का काम अत्यन्त उच्च सांकेतिक विवरणों के माध्यम से किया गया है। अलौकिक की मध्ययुगीन धारणा (कोलरिज की कविताओं के सादृश्य), प्रतीकवाद (जैसे 'सूर्योदय' में सिंहों का युद्ध), प्रतिशोध की धारणा, उपकथाओं का उपयोग (कभी-कभी एक साथ तीन तक), छोटे-मोटे रहस्यों, छद्मवेशों (जैसे 'ऊषाकाल' या 'सूर्योदय' में), ज्योतिषियों, राजपूती साहस तथा वीरता की कथाएँ (जैसे 'रूपनगरची राजकन्या' में), भ्रमणशील गायकों तथा आशुकवियों, मिली-जुली जनभाषा तथा बोलियों, सैनिक अड्डों तथा महलों जैसे मध्ययुगीन विचारों का प्रयोग सब मिलाकर एक मध्यकालीन वातावरण की सृष्टि करता है और जिसका परिवेश आकर्षक और अलौकिक है। इनमें से अधिकांश उपन्यासों में ऐतिहासिक सत्य के कुछ अंश की कमी नहीं है (संभवतः 'रूपनगरची राजकन्या' को छोड़कर)। ये उपन्यास धारावाहिक रूप में लिखे गए थे और इसीलिए इनमें वही अविस्तार, पात्रों के नामों में कुछ गड़बड़ी, ढीला गठन, पात्रों और साधनों की पुनरावृत्ति तथा घटनाओं में साम्य मिलता है। इतिहास के लिए भविष्यवादी दृष्टिकोण रखने के विषय में आप्टे स्काट से मतभेद रखते थे और उनकी चेष्टा पाठकों में आदर्शवाद भरने की थी। शैली और वाक्य-विन्यास समय की भावना के अनुरूप हैं तथा लालित्य में आदर्श हैं। प्रत्येक पात्र अपने लिए उपयुक्त भाषा में बोलता है।

आप्टे ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में स्त्रियों और पुरुषों के लगभग सौ उत्कृष्ट पात्रों का चित्रण किया है। इनमें से लगभग साठ ऐतिहासिक हैं। राक्षस और चन्द्रगुप्त, रनमस्त खाँ तथा रामराजा, शाहाजी एवं आदिल शाह, औरंगजेब, अफजल खाँ तथा उदयभानु; शिवाजी तथा

औरंगजेव; सम्भाजी तथा राजाराम; जयचन्द और पृथ्वीराज; माधवराव द्वितीय के विरुद्ध रघुनाथराव के रूप तथा प्रतिरूप हैं, जिनके द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है कि किस प्रकार अच्छाई वुराई पर विजयी होती है। उच्च साहसपूर्ण तथा आत्मत्यागी पुरुष और स्त्रियाँ, सत् कार्यों में सहायता पहुँचाते हुए महान् तथा बुद्धिमान् महात्मा, अपनी धार्मिक रूढ़ियों में विश्वास करने वाले कट्टर मनुष्य, शोषण तथा उसकी प्रतिक्रियाएँ, निष्ठावान पुरुष तथा देशद्रोही, तुच्छ आत्म-समर्पण करने वाले लोग, सभी पाठक की उत्तेजना को वढ़ाने में सहायक होते हैं। उनका एक पात्र सावल्य अपनी सत्यनिष्ठा, सच्चरित्रता, साहस, स्फूर्ति, अच्छी स्मरण-शक्ति तथा महान् प्रतिभा के लिए पाठकों को सदैव याद रहेगा। वे अपने इस पात्र के प्रति इतने अनुरक्त थे कि सावल्य को केन्द्रीय चरित्र बना कर उपन्यास लिखना चाहते थे, पर वह लिखा नहीं गया। इस छोटी-सी पुस्तक में उनके वहुत से चित्रण की व्याख्या संभव नहीं है, परन्तु उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में वहुत से अन्य स्मरणीय पात्र मिलते हैं, जैसे राक्षस (चन्द्रगुप्त), रनदुल्ला खाँ (ऊषाकाल), नयनपाल (रूपनगरची राजकन्या), तारावाई (सूर्योदय), रणदेवी (सूर्यग्रहण) या किला अधिकारी की पत्नी (केवल स्वराज्य साथी)। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में 'ऊषाकाल', 'रूपनगरची राजकन्या', 'वज्राघात' तथा 'गढ़ आला पण सिंह गेला' अत्यन्त आकर्षक तथा रोचक हैं।

आप्टे मराठी साहित्य में एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में सदैव प्रसिद्ध रहेंगे, क्योंकि संभव है कि उनके सामाजिक उपन्यासों में भावी पीढ़ियों की रुचि कम हो जाए।

उन्होंने अपने उपन्यासों के अतिरिक्त और भी वहुत कुछ लिखा। उन्होंने कुछ कविताएँ लिखीं, कुछ नाटकों को अनूदित किया और कुछ मौलिक रूप से निवन्ध लिखे, लघु कथाएँ तथा लघु जीवनियाँ भी लिखीं। उन्होंने अनेक व्याख्यान दिए, जिनमें से कुछ पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

७. कविता तथा नाटक

उनकी कविता पर ध्यान देते हैं तो हमारे सामने उनका शोक गीत 'शिष्यजन विलाप' है। यह कविता उन्होंने अपने स्कूल के समय ही लिखी थी। उनके बाद के प्रयासों का यह पूर्वरूप था। उन्होंने बहुत कविताएँ नहीं लिखीं और न ही नियमपूर्वक लिखीं। उनकी अधिकांश कविताएँ अंग्रेजी से अनूदित हैं, उदाहरण के लिए लांगफ़ेलो की 'साम ऑफ लाइफ़' या शेली की 'स्काई-लार्क'। संस्कृत से भी उन्होंने छोटी-छोटी कविताओं का अनुवाद किया। 'गढ़ आला पण सिंह गेला' में उनका प्रसिद्ध कृत्रिम गाथा-काव्य वीरता की भावनाओं से ओतप्रोत एक श्रेष्ठ पद्यांश है। वे शैली तथा विषयवस्तु में प्राचीन गाथा काव्यों का बहुत अच्छा अनुकरण कर लेते थे तथा उन्हें किसी भी प्राचीन चारण कवि की रचना समझा जा सकता था। उन्होंने 'शान्ति मंगल' नामक एक लम्बी कविता लिखने के बारे में विचार किया था जो कि उनकी प्रिय पुत्री की स्मृति में एक महाकाव्य होता, परन्तु 'ज्ञानावतरण' (ज्ञान का अवतरण) का वर्णन करते हुए प्रारम्भ के बाईस छन्द ही मिलते हैं। उन्होंने हास्यरस की भी अनेक कविताएँ लिखी हैं, जो अब नहीं मिलतीं। उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' का गद्य में अनुवाद किया था। एक अनुवाद के रूप में यह बहुत ही अच्छी कृति है, क्योंकि इसमें मौलिक अर्थ को बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है; परन्तु गद्य में होने के कारण उसमें मूल का-सा माधुर्य नहीं है।

'सन्त सखू' तथा 'सती पिंगला' आप्टे द्वारा लिखित दो नाटक हैं। 'सन्त सखू' नाटक पंढरपुर के श्री विट्ठल की एक भक्त स्त्री की कहानी है, जिसे उसकी सास तथा पति दिगम्बर पन्त उत्पीड़ित करते हैं। वह पंढरपुर के मंदिर का तीर्थ करने जाने का निश्चय करती है। पर उसे घसीट कर घर वापस लाया जाता है तथा और भी बुरा व्यवहार किया जाता

है। पीटा जाता है तथा जंजीरों से बाँध कर तहखाने में रखा जाता है। श्री विट्ठल उसका रूप धारण कर लेते हैं तथा अपने घर में उपस्थित रहते हैं और उसे उसकी इच्छानुसार तीर्थ-यात्रा पर जाने देते हैं। पंढरपुर में भगवान् विट्ठल का दर्शन करके वह मर जाती है। उसकी अन्त्येष्ठि-क्रिया उसी के गाँव के कुछ ब्राह्मण तीर्थ-यात्री कर देते हैं। परन्तु भगवान् विट्ठल की पत्नी देवी रुक्मिणी उसे जीवन-दान देकर वापस घर भेज देती है। वहाँ पहुंचने पर लोग उसे पहचान लेते हैं और भूत समझकर खदेड़ते हैं। अन्त में यह रहस्य एक दैववाणी द्वारा खुलता है। इस नाटक का प्रकाशन पहली जनवरी, १९११ के 'करमणुक' के वसन्त अंक में हुआ था। कुछ लोगों के अनुसार यह नाटक एक रूपक है, जिसमें लोकमान्य तिलक के अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्षों का चित्रण है तथा यह शिवराम महादेव परांजपे या कृष्णजी प्रभाकर खाडीलकर द्वारा लिखे गए रूपकों की परम्परा में है। सास क्रूर तथा विदेशी ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधित्व करती है; ननद देशद्रोहियों का रूप प्रस्तुत करती है तथा तहखाने में जंजीरों का बन्धन तो स्पष्ट ही है। सखू की दैवी मुक्ति लोगों को महान् भावात्मक सुख प्रदान करती है। लोग इस रूपकात्मक नाटक को समझते थे तथा करतल ध्वनि करते थे। नाट्य कला प्रवर्त्तक नाटक कम्पनी के बड़े कलाकार जैसे सवाई गन्धर्व, नरहरि परांजपे, वासुदेवराव पटवर्धन स्वयं अपनी भजन मण्डली तथा मृदंग के साथ, मास्टर कृष्ण गोपालराव मराठे और कुछ कम महत्वपूर्ण कलाकार इस नाटक का विशाल प्रदर्शन करते थे, जिसे देखने बड़ी संख्या में दर्शक आते थे। टिकटों की भारी बिक्री होती थी। इस नाटक को बहुत समय तक याद रखा जाएगा। इस नाटक की कथा महपति के 'सन्त विजय' से ली गई है।

दूसरा नाटक 'सती पिंगला' मुख्यतः श्रीधर के 'शिवलीलामृत' की एक कथा पर आधारित है। प्रत्यक्ष रूप से उज्जैन के कालकाचार्य की जैन-कथा और प्रसिद्ध संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिकम्' के कुछ अंशों का मिश्रण इसमें मिलता है। यह नाटक सफल नहीं हुआ।

आप्टे ने तीन नाटकों और तीन प्रहसनों का अनुवाद भी किया—'जयध्वज' विक्टर ह्यूगो के 'हरनानी' पर आधारित है; 'श्रुत कृति चरित' कानग्रीव के 'मोर्निंग ब्राइड' का और तीसरा नाटक 'सुमति विजय' शेक्सपियर के 'मेज़र फ़ॉर मेज़र' का रूपान्तर। तीन प्रहसन ये हैं: 'धूर्त विलासिता' (तारतुफ पर आधारित); 'मारून कुटन वैद्यवोआ' (ला मेडिका मालगर लुई पर आधारित) तथा 'जबरिच विवाह' (ल मैरेज फोर्स पर आधारित), ये सभी मोलियर के नाटकों से लिये गए हैं। इन नाटकों में एक दोष है अभारतीय वातावरण। एक नाटक में तो 'हेली' जैसे नाम का भी प्रयोग हुआ है। लोगों को ये ज्यादा रोचक नहीं लगे।

आप्टे ने दुष्टों का चित्रण करने के लिए 'चणक्षापानच कलश' (चालाकी की चरम सीमा) नामक उपन्यास लिखा। यह एक अनुवाद है।

उनके वम्बई विश्वविद्यालय में मराठी 'स्रोत तथा विकास' 'विषय पर दिए गए विल्सन भाषा विज्ञान व्याख्यान-माला में अनेक कमियाँ हैं। उन्होंने भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं को छोड़ दिया है।

हाई स्कूल के विद्यार्थियों के समक्ष दिए गए उनके लगभग तेरह अन्य संक्षिप्त भाषण हैं।

उनकी लघु कहानियों की संख्या पैंतीस है। वे आधुनिक मराठी लघु कहानियों में प्रथम हैं। इनमें से कुछ तो अत्यन्त रोचक हैं, परन्तु इनकी उपदेशात्मकता इनकी रोचकता में कहीं-कहीं वाधा पहुंचाती है।

उनकी वीस संक्षिप्त जीवनियों में भारतीय तथा पश्चिमी वीर पुरुषों और स्त्रियों की कथाएँ हैं। ये उनकी रुचि की व्यापकता को प्रदर्शित करती हैं तथा स्वयं उनके उच्च चरित्र का परिचय देती हैं।

उनके यात्रा-विवरणों में से दो—एक खाण्डाला पर्वतों की सुन्दरता पर तथा दूसरा 'लक्ष्मण झूला' पर अत्यन्त श्रेष्ठ पठनीय रचनाएँ हैं।

यहाँ हम उनके साहित्य के संक्षिप्त सर्वेक्षण की समाप्ति पर पहुँचते हैं। हरि नारायण आप्टे मराठी के तेजस्वी लेखक थे तथा उनकी अपनी

अलग विशिष्ट शैली थी। उनके विचार अपने समय से वहुत आगे थे तथा वे मनुष्य और उसके उत्साह का आभास देते हैं। वे उन इने-गिने प्रतिभावान् साहित्यकारों में से थे, जिन्होंने अपने देश के सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन में भी प्रभावशाली भूमिका अदा की। जिस सत्यनिष्ठा से उन्होंने लिखा, वह उनके अपने श्रेष्ठ और ऊँचे व्यक्तित्व की परिचायक है। उन्होंने मराठी उपन्यास को नवीन विस्तार दिया। वे वहुत समय तक साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में एक महान् प्रतिभावान् तथा गुणी लेखक के रूप में याद किए जाएँगे। उनकी कृतियाँ सौभाग्य से उनकी जन्म शताब्दी के वाद अव पुनः प्राप्त हैं। इस दिशा में सहायता देने के लिए महाराष्ट्र सरकार धन्यवाद की पात्र है।

हम मराठी साहित्य के पाठकों से आप्टे का साहित्य पढ़ने का आग्रह करते हैं। उसे पढ़ कर ही वे उनकी महान् और अद्भुत प्रतिभा का समुचित परिचय प्राप्त कर लाभान्वित होंगे।

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया की स्थापना केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत १९५७ में सत्साहित्य के प्रकाशन, उसको प्रोत्साहन देने तथा ऐसे साहित्य को कम मूल्य पर सर्वसाधारण तक पहुँचाने के मुख्य उद्देश्य से की गई। भारत की विभिन्न भाषाओं में, कुछ चुने हुए क्षेत्रों में, पुस्तकों के प्रकाशन के अतिरिक्त पुस्तक-प्रदर्शनियों और राष्ट्रीय पुस्तक समारोहों का आयोजन तथा पुस्तकों के लेखन, अनुवाद, प्रकाशन और वितरण से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने के लिए विचार-गोष्ठियों का आयोजन भी ट्रस्ट के कार्यकलाप में सम्मिलित है। संक्षेप में, ट्रस्ट का उद्देश्य देश में ऐसा वातावरण तैयार करना है जिसमें पुस्तकों के प्रति सार्वजनिक रुचि जाग्रत हो और अधिक-से-अधिक लोग उनके पठन-पाठन में प्रवृत्त हों।

अब तक ट्रस्ट से दो सौ से अधिक पुस्तकें विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। ट्रस्ट के चालू प्रकाशन-कार्यक्रम में निम्नलिखित पुस्तक-मालाएँ सम्मिलित हैं :—

१. **भारत—देश और लोग :** इस माला का उद्देश्य सामान्य शिक्षित व्यक्ति को, तथा जो विशेषज्ञ न हो उसे, देश के विभिन्न पहलुओं—भूगोल, कृषि, मानव-शास्त्र, भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि का ज्ञान कराना है। संक्षेप में, उद्देश्य यह है कि यह माला, सरल-सुबोध शैली में, एक प्रकार का विश्व-कोष पुस्तकालय बन जाए।

२. **राष्ट्रीय जीवन-चरित माला :** इस माला की लगभग सौ पुस्तकों में भारत के उन महान स्त्री-पुरुषों की संक्षिप्त जीवनियाँ देने की योजना है, जिनका धर्म और दर्शन, इतिहास और समाज-सेवा, साहित्य, संगीत और

कला तथा विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में, समय-समय पर, आविर्भाव होता रहा है।

३. **लोकोपयोगी विज्ञान माला :** विज्ञान ने जो असाधारण विकास और उन्नति इस युग में की है, उससे जन-साधारण को अवगत कराना तथा आज के जीवन में विज्ञान का योग और महत्व दर्शाना इस माला का उद्देश्य है।

४. **सरल इतिहास माला :** इस पुस्तक माला में, जनसाधारण के लिए लिखा गया भारत का इतिहास तो होगा ही, साथ-ही-साथ दूसरे देशों का संक्षिप्त इतिहास भी दिया जाएगा।

५. **विश्व के महत्वपूर्ण ग्रंथ :** इस माला के अन्तर्गत जनसाधारण को उन विश्व-विख्यात ग्रंथों के सरल अनुवाद भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराए जाएंगे जिन्होंने, विभिन्न क्षेत्रों में, विश्वचिन्तन में महत्वपूर्ण योग दिया है।

इन मालाओं के अतिरिक्त ट्रस्ट ऐसी उत्कृष्ट पुस्तकों का, जो अब अप्राप्त हैं, और कुछ विशेष महत्वपूर्ण पांडुलिपियों का भी प्रकाशन करता है।

'राष्ट्रीय जीवन-चरित' माला

प्रधान संपादक

डॉ० बालकृष्ण केसकर

संपादक

प्रो० के० स्वामिनाथन् श्री महेन्द्र वी० देसाई

आगामी पुस्तकें

१. रामानुजाचार्य	श्री आर० पार्थसारथी
२. मध्वाचार्य	डॉ० वी० एन० के० शर्मा
३. नरसिंह मेहता	श्री के० के० शास्त्री
४. ठक्करबापा	श्री इन्दुलाल याज्ञिक
५. बाण	डॉ० लल्लनजी गोपाल
६. हेमचन्द्राचार्य	श्री मधुसूदन मोदी
७. सूरदास	डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा
८. सिद्धराज	श्री चिन्नू भाई जे० नायक
९. हब्बा खातून	श्री एन० एल० चावला
१०. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य	डॉ० राजबलि पाण्डेय
११. पुलकेशी द्वितीय	श्री जयप्रकाश सिंह
१२. कनिष्क	डॉ० ए० के० नारायण
१३. भोज परमार	श्री सी० के० त्रिपाठी
१४. पृथ्वीराज चौहान	डॉ० विद्या प्रकाश

१५.	सवाई जयसिंह	श्री आर० एस० भट्ट
१६.	महाराजा सयाजी राव गायकवाड़	प्रो० के० एच० कामदार
१७.	मौलाना अबुल कलाम आजाद	श्री मालिक राम
१८.	स्वामी रामदास	प्रो० एम० जी० देशमुख
१९.	स्वामी दयानन्द	डॉ० वीरेन्द्र कुमार सिंह
२०.	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	श्री एस० के० बोस
२१.	पंडित मदनमोहन मालवीय	श्री सीताचरण दीक्षित
२२.	जी० जी० आगरकर	प्रो० जी० पी० प्रधान
२३.	पुरन्दरदास	श्री वी० सीतारामैय्या
२४.	तानसेन	ठाकुर जयदेव सिंह
२५.	रामानुजन्	डॉ० वी० डी० शर्मा

प्रकाशित पुस्तकें

	रु०
१. गुरु गोविन्दसिंह—डॉ० गोपाल सिंह	२ ००
२. अहिल्याबाई—श्री हीरालाल शर्मा	१.७५
३. महाराणा प्रताप—श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट	१.७५
४. कबीर—डॉ० पारसनाथ तिवारी	२.००
५. रानी लक्ष्मीबाई—श्री वृन्दावनलाल वर्मा	२.००
६. समुद्रगुप्त—डॉ० लल्लनजी गोपाल	१.२५
७. चन्द्रगुप्त मौर्य—डॉ० लल्लनजी गोपाल	१.२५
८. पंडित विष्णु दिगम्बर —श्री वी० आर० आठवले। अनु० हरि दामोदर घुलेकर	१.२५
९. पंडित भातखण्डे —डॉ० श्रीकृष्ण नारायण रतनजनकर। अनु० अमिताभ मिश्र	१.२५

१०. त्यागराज
—प्रो० पी० साम्बमूर्ति। अनु० आनन्दीलाल तिवारी १.७५
११. रहीम—डॉ० समर बहादुर सिंह। अनु० सुमंगल प्रकाश १.७५
१२. गुरु नानक—डॉ० गोपाल सिंह। अनु० महीप सिंह २.००
१३. हर्ष—श्री वी० डी० गंगल अनु० सुमंगल प्रकाश १.५०
१४. सुब्रह्मण्य भारती (अंग्रेजी)*
—डॉ० (श्रीमती) प्रेमा नन्दकुमार २.२५
१५. शंकरदेव (अंग्रेजी)* —प्रो० महेश्वर नियोग २.००
१६. काजी नजरुल इस्लाम (अंग्रेजी)*—श्री वसुधा चक्रवर्ती २.००
१७. शंकराचार्य—डॉ० टी० एम० पी० महादेवन।
अनु० सुमंगल प्रकाश १.७५
१८. रणजीतसिंह (अंग्रेज़ी)*—श्री डी० आर० सूद २.००
१९. नाना फड़नवीस (अंग्रेज़ी)*—प्रो० आई एन० देवधर १.७५
२०. आर० जी० भण्डारकर (अंग्रेज़ी)*—डॉ० एच० ए० फड़के १.७५
२१. हरि नारायण आप्टे—डॉ० एम० ए० करन्दीकर।
अनु० धीरेन्द्र वर्मा १.७५
२२. अमीर खुसरो (अंग्रेज़ी)*—श्री सैय्यद गुलाम समनानी १.७५
२३. मुथूस्वामी दीक्षितर*—न्यायमूर्ति टी० एल० वेंकटरामा अय्यर २.००
२४. मिर्ज़ा ग़ालिब—श्री मालिक राम २.००

---

*इन पुस्तकों का हिन्दी व अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है।

'भारत—देश और लोग' माला

प्रकाशित पुस्तकें

१. फूलों वाले पेड़
—डॉ० एम० एस० रन्धावा। अनु० सूर्यकुमार जोशी ६.५०
सजिल्द ९.५०

२. असमिया साहित्य—प्रो० हेम बरुआ। अनु० सुमंगल प्रकाश ५.००
सजिल्द ७.५०

३. कुछ परिचित पेड़
—डॉ० एच० सन्तापाऊ। अनु० सुधांशु कुमार जैन ४.००
सजिल्द ७.५०

४. भारत के खनिज पदार्थ
—श्रीमती मेहर डी० एन० वाडिया। अनु० श्रीयांश प्रसाद जैन ४.००
सजिल्द ६.००

५. जनसंख्या—डॉ० एस० एन० अग्रवाल। अनु० धीरेन्द्र वर्मा ४.७५

६. बगीचे के फूल—डॉ० विष्णु स्वरूप। अनु० सूर्यकुमार जोशी ६.००

७. वन और वानिकी—के० पी० सागरीय ४.५०

८. धरती और मिट्टी
—एस० पी० रायचौधरी। अनु० सुमंगल प्रकाश ४.५०

९. भारत का आर्थिक भूगोल
—प्रो० वी० एस० गणनाथन। अनु० सुमंगल प्रकाश ४.५०

१०. औषधीय पौधे—डॉ० सुधांशु कुमार जैन ५.२५

११. पालतू पशु—श्री हरवंश सिंह। अनु० प्रेमकान्त भार्गव ४.२५

१२. सब्जियां—विश्वजित चौधरी। अनु० सूर्यकुमार जोशी ५.५०
१३. निकोबार द्वीप—कौशलकुमार माथुर। अनु० परमात्मा पांडे ४.५०
१४. राजस्थान का भूगोल—विनोदचन्द्र मिश्र ५.५०
१५. स्नेक्स ऑफ़ इंडिया*—डॉ० पी० जे० देवरस ६.५०
१६. फिजिकल ज्योग्रफी ऑफ़ इंडिया*—प्रो० सी० एस० पिचामुथु ५.२५
१७. ज्योग्रफी ऑफ़ वेस्ट बंगाल—प्रो० एस० सी० बोस ६.००
१८. ज्योलोजी ऑफ़ इंडिया*—डॉ० ए० के० डे ५.२५
१९. दि मानसून्स*—पी० के० दास ४.२५
२०. राजस्थान*—डॉ० धर्मपाल ४.५०
२१. परिचित पक्षी†—डॉ० सालिम अली एवं
श्रीमती लईक फतहअली सजिल्द १५.००

INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 31675
Date 10-6-69

* मूल अंग्रेजी में। हिन्दी व अन्य भाषाओं में अनुवाद किये जा रहे हैं।
† हिन्दी अनुवाद प्रेस में।

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया की स्थापना सन् १९५७ में भारत-सरकार के शिक्षा-मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त-संस्था के रूप में इस महत्वपूर्ण उद्देश्य से की गई कि देश में ऐसा वातावरण तैयार किया जाए, जिसमें पुस्तकों के प्रति सार्वजनिक रुचि जाग्रत हो।

ट्रस्ट के कार्यकलाप में पुस्तक-प्रदर्शनियों, राष्ट्रीय पुस्तक समारोहों, विचार-गोष्ठियों एवं लेखन, अनुवाद, प्रकाशन और पुस्तक-वितरण की समस्याओं पर कार्य-गोष्ठियों का आयोजन सम्मिलित है।

सत्साहित्य का प्रकाशन, उसको प्रोत्साहन देना तथा ऐसे साहित्य को कम मूल्य पर सर्व-साधारण तक पहुँचाना ट्रस्ट का प्रथम उद्देश्य है।

Library IIAS, Shimla
H 928.914 6 Ap 83 K
00031675